श्रीमती गोदावरी देवी
(सेठ गोविन्ददास जी की धर्म्मपत्नी)

पूजनीया माता जी

के

कर कमलों में

सादर और सभक्ति

समर्पित

—रत्नकुमारी

दो शब्द

पिता जी ने जब अपने घर की संपत्ति से त्याग-पत्र दिया था, उस समय मैंने उनके त्याग-पत्र पर एक कविता लिखी थी। वह मेरी पहली कविता थी। उसी समय से मेरी इच्छा थी कि मैं उनका एक छोटा-सा जीवन-चरित लिखूँ। जब वे १७ वर्ष के थे, तभी मेरा जन्म हो गया था और बचपने से ही मैं उनके साथ बहुत रही। मुझे पढ़ाने-लिखाने मे, और मेरे साथ प्रत्येक विषय पर वादविवाद कर मेरी हर विषय में गति कराने में, उन्होंने कुछ उठा न रखा। मैं भी उनके जीवन और उनके कार्यों को बारीकी से देखती रही। कई बार आलोचनात्मक दृष्टि से उनके कार्यों पर उनसे चर्चा और वादविवाद भी किया। इन्ही कारणों से उनके जीवन-चरित लिखने की मेरी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उनके त्याग-पत्र पर कविता लिखने के बाद तो उनके जीवन के सम्बन्ध में मैं कुछ नोट तक रखने लगी थी, और चूँकि उनके जीवन से देश में घटित होनेवाली घटनाओ का निकट संबन्ध था, इसलिए इन घटनाओं के भी मैंने कुछ नोट बना लिये थे। उनके नाटकों को भी मैंने इसी दृष्टि से पढ़ा था और उनके नाटको में उन्हे स्वयं को ढूँढ़ने का भी प्रयत्न किया था। परन्तु उनकी पुत्री होने के कारण मेरे लिए उनका जीवन-चरित लिखना कहाँ तक उपयुक्त होगा, इसपर भी मैं विचार करती थी। जब मैंने इसपर और

अधिक विचार किया, तथा यह सोचा कि संसार में लोग स्वयं अपने ही जीवन-चरित लिखते हैं, तब मेरा यह संकोच मुझे निरर्थक प्रतीत हुआ। अब मैं ऐसे अवसर की खोज में थी जब उनके जीवन-चरित का प्रकाशित होना उपयुक्त जान पड़े। महाकोशल में कांग्रेस के आगमन का संवाद सुनते ही मुझे मालूम हो गया कि मेरी साध पूर्ण होने का उपयुक्त अवसर आ गया है। जिस दिन मैंने यह सुना था कि महाकोशल में कांग्रेस होनेवाली है, उसी दिन से मैं यह जानती थी कि इस कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष पिता जी होंगे। उनके जीवन तथा उससे सबन्ध रखने वाली देश की घटनाओं-सम्बन्धी नोटो को मैंने ठीक करना शुरू किया और जहाँ जहाँ उनकी शृंखला टूटती थी उन स्थलों को भी दुरुस्त किया। राजा गोकुलदास जी के जीवन-चरित को फिर से मैंने एक बार पढ़ा और पिता जी के प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही नाटको तथा कविताओं को फिर से देखा। असेम्बली के इस वर्ष के सितम्बर के अधिवेशन के समय जब मैं उनके साथ शिमला मे थी उस समय इन नोटों पर उनसे भी बहुत-सी चर्चा हुई। वे जान तो गये कि मैं क्या करने जा रही हूँ, परंतु न तो मैंने ही स्पष्ट रूप से इस विषय में उनसे कुछ पूछा और न उन्होंने कुछ कहा।

उनके स्वागताध्यक्ष चुने जाते ही मैंने उनके इस चरित को लिखना आरम्भ किया और आज यह देश के सामने जा रहा है। मैं चाहती थी कि इसके प्रकाशित होने के पूर्व पिता जी इसे अच्छी तरह पढ़ लें, पर उन्हें तो इस समय साँस लेने का भी अवकाश नहीं है।

जिसका जीवन-चरित लिखा जाता है उसकी उस चरित में प्रशंसा तो की ही जाती है। मैं उस दोष से मुक्त नहीं हो सकती; फिर मेरे वे पिता हैं, जैसी मैं हूँ वैसा मुझे बनाने में उन्होने कोई कसर नहीं रखी, मै यह भी जानती हूँ; कि उनकी संतानो मे मैं ही उन्हें सबसे अधिक प्यारी हूँ। ऐसी परिस्थिति में मेरे द्वारा उनकी अधिक प्रशंसा हो जाना, उनके सम्बन्ध में अतिशयोक्तियो का आ जाना, कोई असंभव बात नहीं है। फिर भी मैंने अपने ओर से सयम रखने के प्रयत्न मे कमी नही की है। मैं भावुक हूँ, अतः उनके त्याग के वर्णन लिखते समय भावुकता के कारण संभव है मेरा यह सयम मुझसे ठीक तरह से न निभ सका हो। यदि और कुछ नही तो मेरे द्वारा उनकी यह स्तुति ही समझ ली जाय। पुत्री को पिता की, और ऐसे पिता की, स्तुति करने का तो कम से कम हक है ही।

कुछ स्थानों पर मैंने उनकी आलोचना भी की है। उनका दलवन्दी के इस समय का राजनैतिक जीवन मुझे पसन्द नही है। उनका रोज़गार-धन्धा करना भी मुझे अच्छा नही लगता। मेरा मत है कि वे दल बन्दी के कीचड़ मे रहने तथा धन कमाने नही, और ही कुछ करने आये हैं। बहुत ध्यान-पूर्वक सोचने पर मेरा यह निश्चित मत है कि वे जितने वड़े आदमी समझे जाते हैं उससे कही अधिक बड़े है। मेरा विश्वास है कि यदि साहित्य-क्षेत्र में वे काम करें तो कुछ अमर कृतियाँ छोड जा सकते हैं। मैं जानती हूँ कि उनके हृदय में देशभक्ति कूट-कूटकर भरी है और उसके साथ जोश है तथा त्याग। मैं जानती हूँ कि क्रान्तिकाल के युद्ध के समय वे

कागज़-कलम लेकर कविताएँ और नाटक नही लिख सकते, पर स्वतंत्रता के सग्राम मे भाग लेना एक बात है और रोजमर्रा की छोटी-छोटी राजनैतिक बातों में फँसे रहना दूसरी। मेरा तो मत है कि सेन्ट्रल असेम्बली में भी वे अपना अमूल्य समय वृथा नष्ट कर रहे हैं।

उन्होंने मुझे ज्ञान दिया है, मेरी बुद्धि परिष्कृत की है, और जो कुछ मैंने उनसे पाया है उसीके आधार पर में कहती हूँ, और ज़ोर देकर कहती हूँ, कि छोटे-छोटे राजनैतिक कामों में अपने महान् जीवन के समय को नष्ट कर वे अपने और अपने देश के प्रति अन्याय कर रहे है। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो इस प्रकार के छोटे-छोटे काम ही कर सकते हैं, उनमे बडे कामो को करने की क्षमता नही। उनकी दूसरी बात है, पर जिनमें बडे कामों की क्षमता है वे जब छोटे काम करते हैं तब दुःख होता है।

स्वातन्त्र्य-युद्ध के समय यदि आवश्यकता पड़े तो वे फाँसी और गोली का आलिंगन करें, पर इन कामो का स्वातंत्र्य-सग्राम से यदि सम्बन्ध भी है तो बहुत थोड़ा।

मैंने उन्हे, अथवा माता जी को, या अपने अन्य पूज्यों को, उनके प्रति जिन शब्दों का मैं उपयोग करती हूँ, उन शब्दो में जीवन-चरित में न लिखकर उनके नामो से ही लिखा है। यही कदाचित् उपयुक्त भी था।

मेरा मत है कि पिता जी को स्वयं को छोड़कर उनका जीवन-चरित दो ही व्यक्ति लिख सकते थे—एक पं० द्वारकाप्रसाद जी

मिश्र और दूसरी मैं। आत्म-चरित लिखने का काम पिता जी पर और विस्तृत तथा वैज्ञानिक ढंग का जीवन-चरित लिखने का काम मिश्र जी पर छोड़कर मैंने अपना काम कर डाला।

राजा गोकुलदास का महल
जबलपुर
बसन्त पंचमी, सं० १९९५

—रत्नकुमारी

सेठ वसन्तराम जी
सेठ भगीरथ जी
सेठ सेवाराम जी
सेठ रामकृष्णदास जी
सेठ खुशहालचद जी
राजा गोकुलदास जी
सेठ गोपालदास जी
दीवान बहादुर जीवनदास जी
दीवान बहादुर वल्लभदास जी
सेठ गोविन्ददास जी
सेठ जमनादास जी
सेठ मनमोहनदास
सेठ जगमोहनदास

सेठ गोविन्ददास
(सन् १९३८)

पहला अध्याय

पूर्वज

[१]

संवत् १८५७ के माघ मास की अमावास्या के घोर अँधेरे के बाद पूर्व दिशा में उषा की लाली फैली है। राजपूताने के रेगिस्तान की समुद्र के समान असीम रेत को, जो रात भर की ठंड के कारण बर्फ के सामान ठंडी हो गयी थी, तापने के लिए मानों अग्नि की ज्वालाएँ मिल गईं। इन्हीं ज्वालाओ की ओर एक दीर्घकाय ऊँटनी तेजी से जा रही है, मानों ठड से बचने के लिए वह भी यत्नशील है। ऊँटनी पर दो मुसाफिर बैठे हुए हैं। आगे वाला काले और पीछे वाला श्वेत कबल से अपने शरीर को ओतप्रोत ढाँके हुए है। दोनों की आँखें तथा नाक और आँखो तथा नाक के चारों तरफ के चेहरे के कुछ हिस्से के सिवा शरीर का और कोई

भाग दिखायी नही देता । ऊँटनी के नथनो और इन दोनो यात्रियो की नाक से निकलती हुई साँस ठड के कारण धुएँ के सदृश दीख पड़ती है ।

आगे बैठा हुआ मुसाफिर ऊँटनी की गति को थोड़ा धीमा कर अपने साथी से बोला—

"सेवाराम जी, जयसलमेर राज्य की सीमा समाप्त हो गयी । अब आपको कोई डर नही है ।"

सेवाराम जी ने ऊँटवाले की इस बात को सुनकर चेहरे और शरीर के ऊपरी भाग पर से अपने कवल को हटाया । उनका वर्ण साँवला था, शरीर था हृष्ट-पुष्ट और उम्र थी करीब पैंतालीस वर्ष की । बड़ी बडी मूँछो और सिर पर के लबे लबे पट्टो के बाल कुछ कुछ सफेद हो चले थे । सिर पर वे गुलाबी रग की पगड़ी बाँधे थे जो मैली हो गयी थी और शरीर पर गाढ़े का कमर बराबर लबा अगरखा पहने थे । अगरखे के नीचे धोती का भी थोड़ा सा हिस्सा दिखाई देता था और वह भी गाढ़े की ही थी ।

ऊँटवाले के वाक्यो से सेवाराम जी को बड़ी तसल्ली पहुँची । इसका पता लग गया साँस रूपी धुएँ के एकाएक बढ़ जाने से क्योकि इस सन्तोष के कारण उन्होने एक गहरी साँस ली । वे बोले—

"भाई, तीन दिन तक रात-दिन चलने के बाद आज मैं सुख से पानी पियूँगा । तेरी सांडनी सच्ची साडनी है ।"

"परन्तु, सेठजी, इस साडनी ने इसके पहले कभी एकदम इतनी लम्बी यात्रा न की थी ।"

"यदि भगवान ने मुझे कभी दिया तो इसका बदला चुका दूँगा"। सेठ जी बोले।

"अभी भी तो भगवान ने आपको काफी दिया था, सेवाराम जी। इस राज्य मे किस-किस को पन्द्रह रुपया माहवार मिलता है ?"

"परन्तु मैं तो दूसरो को पन्द्रह रुपया माहवार पर नौकर रखना चाहता हूँ, भाई, तब मुझे इस पन्द्रह रुपये माहवार की नौकरी में कैसे सन्तोष हो। फिर नौकरी, और दरबार के पास रहने की नौकरी, में जो ठकुरसुहाती करनी पड़ती है, वह मुझसे नहीं हो सकती।"

"तभी तो दरबार आपसे इतने नाराज़ हो गये।"

ऊँटवाले ने भी अपना कबल उतार डाला। वह एक काले रंग का वृद्ध मनुष्य था। यद्यपि बाल सन के समान सफेद हो गये थे, पर शरीर हृष्ट-पुष्ट था। रंग-उड़ी तथा अनेक जगह फटी हुई पगड़ी के नीचे सफेद पट्टे दिखाई देते थे और सफेद घनी दाढ़ी कान तक चढ़ी हुई थी। इस सफेदी के बीच मे उसके चेहरे की काली चमड़ी विचित्र ही दिखायी देती थी। सेवारामजी के और उसके कपड़ों में कोई खास फर्क न था।

ऊँटवाला अपना चेहरा सेवाराम जी की तरफ घुमाकर बोला—

"सेठ जी, आपके पिता भगीरथ जी की मुझे अच्छी तरह याद है। उन्होंने जीवन भर दरबार को प्रसन्न रखने के लिए भगीरथ यत्न किया। आप उनके जेठे पुत्र हैं। आपका नाम सेवाराम इसलिए रखा था कि आप भी दरबार की सेवा में सारा जीवन

वितायेंगे, पर आपको तो स्वयं दरबार बनने की धुन सवार हुई है। क्या आप अपने सेवाराम नाम को सार्थक न करेंगे ?"

"करूँगा, भाई, पर दरबार बनकर। मैं भी सेवा करूँगा, पर ईश्वर की, किसी एक व्यक्ति की नहीं। तुम जानते हो, मैंने अपने एक लडके का नाम रामकृष्णदास रक्खा है और दूसरे का खुशहाल-चन्द। इसका कारण है।"

"क्या ?"

"एक को मैं रामकृष्ण का दास बनाना चाहता हूँ और दूसरे को खुशहाल। इस दुनियाँ के लिए खुशहाली की सबसे बड़ी आवश्यकता है और उस दुनियाँ के लिए ईश्वर-सेवा की। हमारे कुटुम्ब में अब तक सार्थक नाम ही चले आये हैं। भगवान इन नामों को भी सार्थक करेगा।"

"आपका नाम तो सार्थक नही हुआ, सेठ जी ?"

"यह तो भविष्य बताएगा।"

"अभी मिलते हुए पन्द्रह रुपये तो चले ही गये। भविष्य को कौन जानता है ?"

"भविष्य को न जानते हुए भी अनेक व्यक्ति उसे सुधारने के लिए सब कुछ करते हैं।"

"और इस क्रिया में अधिकांश मर मिटते हैं, पर भविष्य नहीं सुधरता।"

"किसी बडे काम के लिए मर मिटना छोटी बात के लिए जीते रहने से कहीं अच्छा है। देखो, भाई, देश का यह समय भारी अनुष्ठानों का काल है। मुस्लिम राज्य का अन्त होकर एक

तरफ मराठो का उत्थान हो रहा है और दूसरी तरफ फिरंगियो का। मैं भी इस समय तकदीर को अजमाना चाहता हूँ।"

"एक नये राज्य की स्थापना करके?"

"हाँ, परन्तु पृथ्वीपति बनकर नही, वह क्षत्रियों का क्षेत्र है। मैं वैश्यो के क्षेत्र व्यापार का राजा होना चाहता हूँ।"

ऊँटवाला जोर से हँस पड़ा। हँसते हँसते ही वह बोला—

"इस राज्य की स्थापना किस मुल्क में होगी?"

"यह अभी तय नहीं किया है। जिधर तकदीर ले जाय।"

सोने का सूर्य आकाश और सारे मरुस्थल को आलोकित कर रहा था। ऊँटनी ने बलबला कर अपनी पानी की थैली मुँह से निकाल उसका पानी पिया। पानी पीते-पीते ही वह एक छोटे से गाँव के निकट पहुँच गई। गाँव के बाहर कुएँ पर काफी भीड़ थी। पनिहारियाँ पानी भरती हुई गा रही थीं।

ऊँटवाले ने ऊँटनी को रोककर बिठाया। सेवारामजी और ऊँटवाला दोनो ऊँट से उतर पड़े। सेवारामजी के पास पहने हुए कपड़े और कंबल को छोड़कर बगल मे एक गाढ़े की धोती और हाथ मे लोटा डोर के अतिरिक्त और कोई सामान न था।

[२]

इस घटना के पाँच वर्ष बाद जबलपुर जिले की जबलपुर तहसील के बेलखाड़ू गाँव मे सेठ सेवारामजी अपने निजी मकान मे रहते थे। यद्यपि उस समय रेल आदि के सदृश कोई तेज़ सवारियाँ न थीं, पर महत्त्वाकांक्षा ने जयसलमेर सदृश सुदूर देश से भी सेठ सेवारामजी को इतनी दूर भेज दिया था।

जबलपुर ज़िला इस समय मराठों की अमलदारी में था। सागर के महाराष्ट्र खेर वंश का यहाँ राज्य था।

सेठ सेवाराम जी इस समय जबलपुर जिले के एक खास व्यापारी होगये थे। व्यापार की कमाई से धीरे धीरे उन्होंने करीब एक लाख रुपया जमा कर लिया था और बेलखाड़ू गाँव में अपना एक मकान भी बनवा लिया था। उस समय यद्यपि वेतन की निरख बहुत कम थी, तथापि सेठ जी तो अपने कारिन्दे को वही पन्द्रह रुपया माहवार देते थे जो जयसलमेर राज्य की नौकरी में उन्हें मिलता था।

सेठ जी अपने मकान की दालान में गद्दी पर बैठे हुए बड़ी उत्कण्ठा से किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास ही उनका कारिन्दा बैठा हुआ था। कुछ ही देर में बाहर से बैलों की घंटी और गाड़ी के चाकों की गड़गड़ाहट सुनायी दी। यह भद्दी आवाज़ भी आज तो सेठ जी को किसी सुरीली तान से कम भली न लगी। उनका मुख एकाएक खिल उठा और वे उठते हुए अपने कारिन्दे से बोले—

"लो, भाई, गिरिधारीलाल तथा औरतें और बच्चे आ पहुँचे।"

सेवारामजी अपने कारिन्दे के साथ बाहर चले और थोड़ी ही देर में अपने भाई गिरिधारीलाल तथा अपने दोनो पुत्र रामकृष्ण-दास और खुशहालचन्द के साथ फिर घर की दालान में लौट आये। गिरिधारीलाल सेवाराम जी से बहुत मिलते-जुलते थे। उम्र उनसे ४, ५ वर्ष कम होगी। रामकृष्णदास और खुशहालचन्द युवक थे। वर्ण इनका भी साँवला था। इधर चारो व्यक्ति प्रसन्न मुख से गद्दी पर आकर बैठे और उधर कारिन्दे के साथ चार स्त्रियों ने

घर के भीतरी भाग मे प्रवेश किया। स्त्रियो की वेषभूषा राजस्थानी थी। घेरदार लँहगे थे और उनपर ओढ़न। घूँघट से मुँह ढका हुआ था। हाथो तथा पैरों मे चाँदी के भद्दे आभूषण थे। इन चारो स्त्रियो मे दो थी सेवाराम जी और गिरिधारीलाल की पत्नी तथा दो थी रामकृष्णदास और खुशहालचन्द की पत्नी।

कुशल प्रश्नोत्तर के उपरान्त सेठ जी के छोटे भाई ने उनके जयसलमेर से चले आने के बाद अपने कष्टो का एक लम्बा वर्णन किया जिसमे दो कष्ट मुख्य थे—राज्य की नाराज़ी और आर्थिक कठिनाइयाँ। सेवाराम जी ने ध्यान पूर्वक यह कष्ट गाथा सुनी। कुछ देर वे चुपचाप कुछ सोचते रहे। इसके बाद एकाएक बोले—

"गिरिधारी, तुमको ये सब कष्ट मेरे कारण हुए। अपनी महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर अपनी सारी गृहस्थी का बोझा तुम पर लाद, यदि मैं राज्य को नाराज़ करके इस तरह न भाग आता तो तुम यह सब कष्ट क्यो पाते? भाई, मुझे इस पाप का प्रायश्चित करना पड़ेगा।"

गिरिधारीलाल, अपने अग्रज का यह भाषण सुन कुछ चकपका से गये। वे बोले—

"भाई साहब, मैंने ये सब बातें आपको दोष देने के लिए नहीं कही हैं। मैंने तो केवल .. .."

सेवाराम जी बीच ही मे बोल उठे—"ठीक है, भाई, दोष देने के लिए तुमने कोई बात नही कही, यह मैं जानता हूँ, पर फिर भी मुझे तो अपना कर्तव्य करना ही होगा। तुम जानते हो मैंने क्या निश्चय किया है?"

गिरिधारीलाल ने कोई उत्तर न दिया, पर वे भाई की ओर देखने लगे।

सेवाराम जी ने कहा—

"मेरी लखपती होने की इच्छा थी। भगवान ने मुझे पाँच वर्षों के भीतर ही लाख रुपए के ऊपर दे दिये। अब तक मैंने जो कुछ कमाया है वह सब मैं तुम्हे देता हूँ। गिरिधारीलाल, जिस तरह जयसलमेर से लोटा-डोर लेकर निकला था, उसी तरह फिर निकलूँगा। फर्क इतना ही होगा कि उस समय अकेला निकला था, अब स्त्री-बच्चो के साथ निकलूँगा ॥"

गिरिधारीलाल भाई के इस सकल्प को सुन अवाक् रह गये। रामकृष्णदास और खुशहालचन्द आराम करने आये थे, और अधिक कष्ट पाने नहीं। गिरिधारीलाल ने भाई के सकल्प को बदलवाने के लिए बड़ी अनुनय विनय की। रामकृष्णदास और खुशहालचन्द यद्यपि चुप रहे, पर उनकी आँखे अवश्य इस अनुनय विनय का साथ देती रही।

सेवाराम जी दृढ-प्रतिज्ञ थे। उनके सकल्प को भाई, भौजाई, पत्नी, पुत्र कोई भी न बदलवा सके। दूसरे ही दिन उसी लोटा डोर को हाथ में ले पत्नी, पुत्रो और पुत्र-वधुओ के साथ सेवारामजी ने बेलखाड़ू गाँव छोड़ दिया।

[३]

इस घटना को घटित हुए दस वर्ष बीत चुके थे। जबलपुर नगर जगल काट-काट कर बसाया जा रहा था। हिंसक पशुओ की गुफाओ के स्थान पर मनुष्यो के मकान बन रहे थे। उनके

गर्जन-तर्जन की जगह मनुष्यो की मृदु बोली सुनायी पड़ने लगी थी। जबलपुर के हनुमानताल नामक आधुनिक मुहल्ले के स्थान पर भारी जंगल था। यद्यपि हनुमान ताल पर का हनुमान जी का मन्दिर बहुत पुराना था तथापि इसके आसपास कोई बस्ती न होने के कारण तालाव में पानी पीने के लिए कई वार शेर तक आ जाते थे। हनुमान ताल की एक पाल पर जबलपुर के दो नागरिक खड़े हुए अपने सामने के एक वड़े से बनते हुए मकान को देखकर बातें कर रहे थे—

एक—जानते हो, भाई, यह किसका मकान बन रहा है ?

दूसरा—सेठ सेवाराम का है न ?

पहला—हाँ, सेठ सेवाराम का। भाई, इस आदमी की तकदीर भी तकदीर ही है। लोटा-डोर लेकर मारवाड़ से आया। लाखो कमाए। अब मकान क्या, किला बनावा रहा है। मकान के बाद जहाँ हम खड़े हैं, यहाँ मन्दिर बनाने वाला है, उसमे गोपाल जी की मूर्ति स्थापित करेगा। यहाँ से कुछ दूर ही बहुत सी जमीन खरीदी है, वहाँ तालाव खुदवायेगा और बगीचा लगवायेगा।

सेठ सेवाराम जी के देहावसान के पहले उनकी सब इच्छाएँ पूरी हो गयी। जबलपुर नगर का सबसे बड़ा मकान, सबसे बड़ा मन्दिर और सबसे बड़े बगीचे का उन्होने निर्माण कर दिया। करीब पाँच लाख रुपया नकद और यह सारी सम्पत्ति उन्होने अपने पुत्रो को देकर अपना अन्तिम समय भगवत सेवा में लगाया। जबलपुर और जबलपुर के आस-पास वे अपने समय के सबसे बड़े आदमी थे। रामकृष्णदास रामकृष्ण के सच्चे दास निकले और

खुशहालचन्द ऐसे खुशहाल हुए जैसा उस समय जबलपुर क्या, जबलपुर के आस पास दूर दूर तक कोई न था । सेठ सेवारामजी की मृत्यु के पहले उनके एक क्या अनेक कारिन्दे पन्द्रह रुपया ही क्या इससे भी कही अधिक वेतन पाते थे।

रामकृष्णदास जी का देहावसान करीब पचास वर्ष की अवस्था मे हुआ और खुशहालचन्द जी का ६३ वर्ष की उम्र में। रामकृष्ण-दास जी के कोई पुत्र न था। खुशहालचन्द जी के दो पुत्र थे— गोकुलदास और गोपालदास ।

खुशहालचन्द जी के समय जबलपुर पर अँग्रेज़ो की अमलदारी हो गई थी और सन् १८५७ के स्वातंत्र्य सग्राम मे अँग्रेज़ो को बहुत बडी सहायता देने के कारण उनका कुटुम्ब बड़ा राजभक्त कुटुम्ब समझा जाता था। इस सहायता देने के उपलक्ष में सेठ खुशहाल-चन्द जी को अँग्रेज़ी सरकार से हीरे से जडी हुई एक सोने की कमरपेटी मिली थी, जिस पर अँग्रेजी मे निम्नलिखित वाक्य खुदे हुए हैं—

Presented by Government of India to

Seth Khusal Chand

for his loyal services to the State during the rebellion of 1857.

October 1857

खुशहालचन्द जी अपनी मृत्यु के समय करीब पच्चीस लाख के धनी थे। वे केवल व्यापारी ही न रहे थे, पर जमींदार भी हो गये थे।

पिता की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् ही गोपालदास जी का देहान्त हो गया। उनके एक पुत्र थे—वल्लभदास। गोकुलदास की कई सन्तानें हुईं, पर उनके भी एक ही पुत्र बचे—जीवनदास।

गोकुलदास जी ने पिता से प्राप्त संपत्ति और यश दोनो की ही दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति की। इस उन्नति के कारण उनकी बुद्धि की विचक्षणता के सिवा उनकी सचरित्रता और अध्यवसाय थे। गोकुलदास जी की शिक्षा दूसरी हिन्दी तक ही हुई थी, इतने पर भी पच्चीस लाख की सम्पत्ति को बढ़ाकर वे कई करोड़ तक ले गये। मध्यप्रान्त, मध्यभारत, राजपूताना, सयुक्त प्रान्त, पंजाब, बम्बई और कलकत्ता सभी जगह उनका व्यापार था। वे आठ सौ गाँव के ज़मींदार थे और सैकड़ों दूकानो तथा फैक्टरियो के मालिक।

सेवाराम जी पन्द्रह रुपया मासिक मे जयसलमेर दरबार के नौकर थे और गोकुलदास जी पन्द्रह लाख रुपया सालाना आमदनी के धनी। उनके कल-कारखानो के मैनेजर पन्द्रह-पन्द्रह सौ रुपया महीना नौकरी पाते थे। गोकुलदास जी के दादा जिस जयसलमेर रियासत के नौकर थे उसी जयसलमेर रियासत को आवश्यकता पड़ने पर एक बार गोकुलदास जी ने अढ़ाई लाख रुपया कर्ज दिया था।

गोकुलदास जी ने जिस तरह धन कमाया उसी तरह खर्च भी किया। उनके महल, उनका राजसी ठाट-बाट, उनके सार्वजनिक कार्य और सरकार को दी हुई सहायताएँ सभी अपूर्व थे।

जबलपुर नगर का वाटर वर्क्स, टाउन हाल, औरतों का

अस्पताल, बच्चो का अस्पताल, एवं जबलपुर नगर की सभी सार्वजनिक सस्थाओं का निर्माण उन्ही ने अपने द्रव्य से कराया। वे यथार्थ में आधुनिक जबलपुर के निर्माता थे। उनकी दानशीलता के सम्बन्ध में ता० १७ फरवरी सन् १८८७ को मध्यप्रान्त के तत्कालीन चीफ कमिश्नर सर सी० एच० टी० क्रासवेट ने जबलपुर के दरबार के अपने एक भापण में कहा था—

"जबलपुर के दरबार मे राजा गोकुलदास की दानशीलता के सम्बन्ध मे कुछ कहना एक साधारण बात है। परन्तु जबलपुर-निवासियो से यह कहना मैं अपना धर्म समझता हूँ कि सार्वजनिक उदारता के विपय में राजा गोकुलदास के अपार दान के स्वर्ण-पत्रों की छाया में वे अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से नही बच सकते, और न अपनी न्यूनता को छिपा सकते। आप लोगो को स्मरण होगा कि मैं सत्य और उचित बात, चाहे वह रोचक न हो, सभाओ में अवश्य कह देना चाहता हूँ। अतएव नगर-निवासी सज्जनो से मैं यह अवश्य कहूँगा कि राजा गोकुलदास के दान-समुद्र ने आप लोगो के दान को डुबो दिया है।"

उनके इन महान् कार्यों के उपलक्ष में अंग्रेज सरकार ने उन्हे राजा की पदवी से विभूपित किया था। आज इन पदवियो का मूल्य नही रह गया है, पर जिस समय गोकुलदास जी को राजा की पदवी मिली उस समय इन पदवियों का महान मूल्य था। मध्यप्रान्त ही नही सारे हिन्दुस्तान में राजा गोकुलदास जी की महान प्रतिष्ठा थी और वे इस देश के बड़े से बड़े आदमियो में से

एक माने जाते थे। मारवाड़ी समाज के तो वे सबसे बड़े आदमी थे।

संवत् १९५२ के आश्विन मास मे अपने महल के एक कमरे में राजा गोकुलदास जी बैठे हुए थे। उनके पास ही उनके भतीजे रायबहादुर वल्लभदास और उनके पुत्र कुँअर जीवनदास उपस्थित थे। और भी कई लोग मौजूद थे। इस समय संपत्ति और यश दोनों ही दृष्टियो से राजा साहब के भाग्य-सूर्य का मध्याह्न काल था। वे बोले—

"आप लोग समझते हैं कि मैं हर तरह से सुखी हूँ ?"

जिस मनुष्य की शारीरिक संपत्ति ६० वर्ष की अवस्था मे भी ४० वर्ष की अवस्थावाले के सदृश हो, जिसके पास लाखो नहीं पर करोड़ों की संपदा हो, जिसकी यश-पताका सारे देश में लहलहा रही हो, उसे भी दुःख होगा, इसकी कोई कल्पना भी न कर सकता था। सब लोग चुपचाप उनके मुख की ओर देखने लगे। राजा साहब फिर बोले—

"मुझे एक ही दुःख है। मेरे नाती नही है। इस वृद्धावस्था में भगवान यदि मुझे नाती का मुख और दिखा देते . . . ।"

दूसरा अध्याय

जन्म और बाल्यकाल

[१]

आश्विन शुक्ल दशमी उत्तर भारत मे विजय का दिवस माना जाता है। आर्यों की अनार्यों पर दशहरे के दिन विजय हुई थी। राम ने यह विजय हजारो वर्ष पूर्व की थी, परन्तु आज भी देश इस दिन को नही भूला है।

सभी जगह दशहरे को जुलूसों की धूम रहती है। हिन्दू रियासतों में वहाँ के राजाओ का जुलूस निकलता है। बंगाल में दुर्गा का और कही रामलीला और काली दोनो का।

जबलपुर में सारे हिन्दू त्यौहारो में दशहरे का जितना महत्त्व है उतना किसी त्यौहार का नही। रामलीला और काली दोनो का जुलूस हनुमानताल पर आता है और इसी तालाब में काली की प्रतिमाओ का विसर्जन होता है। जुलूस और इस मेले मे हजारों आदमी भाग लेते हैं।

संवत् १९५३ के दशहरे का वृहत जुलूस हनुमानताल पर 'राजा गोकुलदास महल' के सामने से जा रहा था। बाजो और राम तथा काली के जय-घोष से सारा वायुमण्डल प्रतिध्वनित था। इसी समय राजा साहब के महल के फाटक पर एकाएक बन्दूको का शब्द

सुनायी दिया। महल के आसपास की भीड़ तथा जुलूस का जन समुदाय चौंक पड़ा। कुछ लोग तो इधर-उधर भागे और कुछ को यह भय हुआ कि महल का कोई पहरेदार पागल होकर किसी को अपनी बन्दूक का निशाना तो नहीं बना रहा है। पर बन्दूकों की आवाज़ के साथ शीघ्र ही अनेक थालियाँ बजने की झंकार सुन पड़ी। फिर तो यह ख़बर फैलते भी देर न लगी कि राजा साहब को वृद्धावस्था में पौत्र रत्न प्राप्त हुआ है।

राजा साहब के उपकारों के कारण सारा नगर उन्हें श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखता था। दशहरे के जुलूस का उत्साह दुगना हो गया और हज़ारों नागरिकों ने राजा साहब को बधाइयाँ दीं।

राजा गोकुलदास जी की ख़ुशी का ठिकाना न था। भगवान ने उनकी रही हुई कामना को भी पूरा कर दिया।

राजा साहब के महल में महीनों पौत्रोत्सव मनाया गया। जलसों में करीब एक लाख रुपये ख़र्च किये गये और इतने ही ख़ैरात में दिये गये।

अपने पौत्र का नाम राजा गोकुलदास जी ने गोविन्ददास रखा।

[२]

अत्यधिक शोक के सदृश अत्यधिक हर्ष में भी सयमी मनुष्य तक अपना संयम भूल जाते हैं और वृद्धों की कृतियाँ भी बच्चों के समान होने लगती हैं। गोविन्ददास के जन्म से वृद्ध राजा गोकुलदास जी की भी कुछ दिन तक यही दशा रही।

जो कोई भी घर आता उसे वे गोविन्ददास को अवश्य दिखाते।

रात को भी बिना गोविन्ददास को दिखाये वे किसी को घर से न जाने देते। उस समय बिजली का प्रकाश न था, अत. रात्रि को आने वालो को बच्चा अच्छी तरह दिख जाय और प्रकाश की कमी न रहे इसलिए राजा साहब अपने हाथ से लालटेन ले जाते और उसको बच्चे के मुख के इतने निकट कर देते कि कई बार तो बच्चा रो पड़ता।

इस नयी नुमाइश से रानी जी की चिन्ता बहुत बढ़ गयी थी। उन्हे हमेशा 'राई-लून' का प्रबन्ध रखना पड़ता। बच्चे को नजर लग कर कोई व्याधि न हो जाय इसलिए हर मनुष्य के देखने के बाद बच्चे पर 'राई लून' अवश्य उतारा जाता। राई और नमक के न जाने कितने बोरे उस समय राजा साहब के महल मे ख़र्च हुए थे।

एक बात से और भी राजा साहब के कुटुम्ब को बड़ा हर्ष था। गोविन्ददास गौर वर्ण के थे। इनके पहले राजा साहब के कुटुम्ब मे सभी साँवले हुए थे। रानी जी तो सदा अपने इस भाव को व्यक्त किया करतीं और इसका श्रेय अपनी बहू को देती जिसने उनके घर का वर्ण सुधारा था।

राजा साहब के हाथों में थोड़ा कप था, पर पौत्र को वे अपने हाथ से दूध न पिलायें, यह कैसे सम्भव था। एक दिन जब वे सोने के छोटे से चमचे से गोविन्ददास को गाय का दूध पिला रहे थे तब हाथ के कप के कारण वह दूध मुँह मे न जाकर नाक में चला गया। बड़ी जोर की ठसकी लगी और गोविन्ददास ने रोना शुरू किया। यद्यपि ठसकी लग जाना कोई बड़ी भारी बात

सेठ गोविन्ददास

अवस्था ९ वर्ष, सन् १९०१

सेठ गोविन्ददास

अवस्था १२ वर्ष, सन् १९०८

न थी तथापि राजा साहब इतना घबड़ाए कि सिविल सर्जन को बुलाए बिना उनसे न रहा गया। उस दिन से गोविन्ददास को दूध न पिलाने की उन्होने प्रतिज्ञा कर ली।

महल के सगमरमर के फर्शों पर रखे हुए चाँदी के पालने की मखमली गद्दियो पर लिटा लिटा और झुला झुला कर पारे के कटोरे और सोने के चमचे से दूध पिला पिला कर गोविन्ददास 'राजा गोकुलदास महल' मे बड़े किये जाने लगे।

राजा गोकुलदास जी भी अपने पूर्वजों के सदृश बड़े धर्मनिष्ठ थे। जब गोविन्ददास खिलौनों से खेलने के योग्य हुए तब उनके लिए वे राम और कृष्ण की मिट्टी की मूर्तियों से लेकर चाँदी की मूर्तियाँ लाने लगे। ये मूर्तियाँ ही गोविन्ददास के खिलौने थे। बालक गोविन्ददास इन खिलौनो को 'सुन्दारा' कहते, उनकी माँ इन 'सुन्दारो' की अनेक कथाएँ कहती और कुछ दिन बाद तो इन कथाओं को सुने बिना गोविन्ददास को नीद तक न आती थी।

[३]

पाँच वर्ष की अवस्था मे गोविन्ददास का पाटी-पूजन कराया गया। आधुनिक स्कूलो से राजा साहब को घृणा थी। उनका मत था कि इन स्कूलो की पढ़ाई से विद्यार्थी का नुकसान ही नुकसान है, और सबसे बड़ी हानि है उसका अधर्मी हो जाना। राजा साहब ने गोविन्ददास को स्कूल न भेजा। इतना ही नही, पर यह वसीहत भी कर दी कि उनके बाद भी गोविन्ददास को स्कूल या कालेज न भेजा जाय।

जिस ज़माने में गोविन्ददास का पठन-पाठन आरम्भ हुआ उस ज़माने मे अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेज़ी सभ्यता का बड़ा दबदबा हो गया था। अतः जहाँ एक ओर राजा साहब गोविन्ददास को स्कूल और कालेज भेजकर अधर्मी न बनाना चाहते थे, वहाँ दूसरी ओर यह भी चाहते थे कि गोविन्ददास को अंग्रेज़ी भाषा की ऊँची से ऊँची शिक्षा मिले। इस उद्देश्य की पूर्ति का उन्होने यह उपाय निकाला कि घर ही मे गोविन्ददास को ऊँची से ऊँची शिक्षा देने के लिए योग्य से योग्य अध्यापक रखे जाँय।

हिन्दी का थोड़ा सा ज्ञान होने के बाद ही उन्हें हिन्दी के साथ ही साथ अंग्रेज़ी की शिक्षा देने का इन्तज़ाम किया गया। अंग्रेज़ी की पहली पुस्तक पढ़ाने के लिए गवर्नमेन्ट कालेज के एक रिटायर्ड प्रोफ़ेसर बाबू द्वारकानाथ सरकार दो सौ रुपया मासिक पर रखे गये। जिस विद्यार्थी को अंग्रेज़ी की पहली पुस्तक पढ़ाने के लिए भी गवर्नमेन्ट कालेज का रिटायर्ड प्रोफ़ेसर रखा गया हो उसका पठन-पाठन कैसा हुआ होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। यद्यपि गोविन्ददास किसी स्कूल या कालेज में नहीं पढ़े, उन्होंने कोइ परीक्षाएँ नही दी, पर उन्हें पढ़ाने के लिए उनके समस्त विद्यार्थी जीवन में इसी प्रकार के शिक्षक रहे। कई अंग्रेज़ भी उनके शिक्षक रहे। उनके अध्यापको को पाँच पाँच सौ और सात सात सौ रुपया मासिक तनख्वाहें मिलती थी। उनके अंग्रेज़ी के पूर्ण ज्ञान और अंग्रेज़ी भाषा के अंग्रेज़ो के सदृश ही उच्चारण का यही सबब है।

[४]

पहले राजा गोकुलदास जी की इच्छा नाती का मुख देखने भर की थी, परन्तु 'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई', उसी प्रकार अब उनकी इच्छा अपने सामने ही नाती के विवाह करने की भी हो गयी। राजा साहब अब सत्तर वर्ष की अवस्था के निकट पहुँच रहे थे, उस समय बाल-विवाह की प्रथा भी थी, फिर भला इस विवाह मे देर कैसे हो ?

जयपुर रियासत में सीकर राज्य के पोद्दार सेठ लक्ष्मीनारायण जी बीहानी की पुत्री गोदावरी देवी से गोविन्ददास की सगाई की गयी। इस विवाह को राजा साहब अपने जीवन का अन्तिम कार्य समझते थे। विवाह-शादियो मे अपव्यय उस काल की प्रथा थी, अतः इस विवाह में धूमधाम की कमी कैसे रह सकती थी ?

विवाह की तैयारी में पूरा एक वर्ष लग गया। सीकर मे विवाह के मण्डप बनाने में ही एक लाख रुपए के ऊपर खर्च हुआ। बरात में जबलपुर से सीकर तीन हजार आदमी गये। उस समय विवाहादि शुभ कार्यों में वेश्याओं का नाच एक आवश्यक बात समझी जाती थी, यहाँ तक कि वे मंगलमुखी कहलाती थी और उनके बिना कोई मंगल कार्य पूरा न होता था। हिन्दुस्तान भर मे एक भी ऐसी मशहूर वेश्या न होगी जो इस विवाह मे न आयी हो।

इस विवाह में पाँच लाख रुपये के ऊपर खर्च हुआ और सचमुच ही राजा साहब के जीवन का यह अन्तिम कार्य सिद्ध हुआ, क्योकि इसके दस मास के पश्चात् ही राजा साहब का देहावसान

हो गया। जिस समय गोविन्ददास का विवाह हुआ उस समय गोविन्ददास की अवस्था ११॥ वर्ष और जिस समय राजा साहब का देहान्त हुआ उस समय उनकी उम्र १२॥ वर्ष के लगभग थी।

तीसरा अध्याय

सार्वजनिक जीवन-प्रवेश तक

[१]

राजा गोकुलदास जी के जीवन तक उनका कुटुम्ब यदि एक ओर ठाटबाट और शानशौकत में उस काल का पूरा रईसी कुटुम्ब था, तो दूसरी ओर राजा साहब की व्यक्तिगत धर्म्मनिष्ठा, नैतिक चरित्र और व्यापार धन्धों में अत्यधिक परिश्रम-शीलता का भी उनके कुटुम्ब पर कम असर न था।

वे हमेशा गोविन्ददास को अपने साथ रखते थे। जबलपुर के महल मे गोविन्ददास उन्हीके साथ रहते और जब वे व्यवसाय के सम्बन्ध मे दौरे पर जाते तब भी उन्हीके साथ जाते थे। गोविन्ददास के पठन-पाठन में कोई हानि न हो, इसलिए उनके अध्यापक को भी राजा साहब के दौरो मे गोविन्ददास के साथ रहना पड़ता था।

राजा साहब ने गोविन्ददास के चरित्र को अपने समान ही बनाने का सतत प्रयत्न किया। इसके लिए धर्मनिष्ठा और परिश्रम दो ही उनके सबसे बड़े साधन थे। गोविन्ददास को वे नित्य प्रति धार्मिक ग्रन्थ सुनवाते और भगवत सेवा में भी अपने साथ रखते

थे। मन्दिर में एक भी उत्सव ऐसा न होता जिसमें गोविन्ददास मन्दिर मे स्नान न करें। ठीक समय पर ठीक काम परिश्रम के साथ करने की भी राजा साहब ने गोविन्ददास को आदत डलवा दी थी। राजा साहब की दिनचर्या घड़ी के काटे के सदृश चलती थी। यही उन्होंने गोविन्ददास को भी सिखाया। राजा साहब का विश्वास था कि यदि मनुष्य का जीवन धर्म्मनिष्ठ रहे तो ठाट-बाट और शानशौकत के रहते हुए भी उसका चरित्र शुद्ध रह सकता है। उनका यह मत कहाँ तक ठीक था यह कहना तो कठिन है, क्योंकि जहाँ हमे बडे बड़े धर्म्मनिष्ठ भृष्ट चरित्र दिखाई देते हैं, वहाँ यह भी देखने को मिलता है कि जिन्हें धर्म्म से ज़रा भी सरोकार नहीं, वे भी सच्चरित्र हैं। फिर भी इसमे सन्देह नही कि गोविन्ददास के जीवन पर राजा साहब की इस धर्मनिष्ठा का अमिट एव महान प्रभाव पड़ा और उन्हे सच्चरित्र बनाये रखने में भी इस धर्मनिष्ठा ने अत्यधिक सहायता दी।

राजा साहब की मृत्यु के पश्चात उनके महल के वायुमण्डल मे एक ओर ठाटबाट, शानशौकत और विलास-प्रियता बढ़ी और दूसरी ओर व्यापार धन्धों में परिश्रम करनेवाला कोई भी व्यक्ति न रहा। यद्यपि गोविन्ददास की माता धार्मिक और नैतिक दोनो ही दृष्टियो से आदर्श चरित्र थीं, और उसका भी गोविन्ददास के जीवन पर कम प्रभाव नहीं पडा, तथापि इतने बड़े काम धन्धे को सभालने के लिए जिस अध्यवसाय की आवश्यकता थी वह गुण परदे में महल के अन्दर रहनेवाली एक हिन्दू महिला के जीवन में कैसे हो सकता है?

मनुष्य जीवन की विभिन्नता पूर्व जन्म के कर्मों के कारण ही है, यह यदि न माना जाय तो इस विभिन्नता का क्या कारण है, इसके लिए अन्य कोई समाधान-कारक उत्तर नही मिलता। फिर भी पूर्व जन्म के अतिरिक्त इस जन्म मे भी वाल्यावस्था से जो कुछ मनुष्य देखता और सुनता है, उसका भी उसके मष्तिष्क और हृदय पर कम असर नही पड़ता।

गोविन्ददास ने बारह-तेरह वर्ष की अवस्था तक अपने पितामह के साथ रहकर जो कुछ देखा, सुना, किया था उसका उनके चरित्र पर प्रभाव पड़ा और अब जो वे देखने लगे उसका भी प्रभाव उन पर पड़ने लगा।

गोविन्ददास की माता उन्हे धर्मनिष्ट और चरित्रवान तो बनाये रख सकी, पर उन्हे व्यापार धन्धे में दक्ष बनानेवाला कोई न था। उधर अंग्रेज़ी भाषा मे उन्हे साहित्य पढ़ाया जाता था, अतः उनकी प्रवृत्ति व्यापार से हटकर साहित्य की ओर बढ़ चली।

हर एक मनुष्य के जीवन मे बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से अठारह-बीस वर्ष की अवस्था का समय बड़े महत्त्व का होता है। यथार्थ में इन्हीं वर्षों में मनुष्य का मस्तिष्क और हृदय बनता है। इस काल मे गोविन्ददास के जीवन पर यदि एक ओर उनके पिता के विलासपूर्ण जीवन का प्रभाव पड़ा, तो दूसरी ओर उनकी माता के तपस्वी जीवन का। एक ओर यदि उनपर बारह वर्ष के जीवन तक जो कुछ देखा, सुना और किया था, उसके मनन का प्रभाव था, तो दूसरी ओर बारह वर्ष की अवस्था से बीस वर्ष की अवस्था तक जो कुछ साहित्यिक शिक्षा मिली उसका प्रभाव पड़ता गया।

[२]

बीस वर्ष के युवक गोविन्ददास उस समय के पूरे रईस थे, परन्तु सच्चरित्र रईस। भगवान ने उन्हे सुन्दरता और स्वास्थ्य दिया था। पूर्वजो से उन्हें सपत्ति मिली थी। अच्छे शिक्षकों ने उन्हें केवल बी० ए० तक की साहित्यिक शिक्षा ही न दी थी, परन्तु कुछ कलाएं भी सिखायी थी—जैसे घोड़े की सवारी, अंग्रेजी नाच और स्केटिंग इत्यादि। वे अंग्रेजी वेषभूषा मे रहते थे, अच्छी से अच्छी अंग्रेजी भाषा बोलते और लिखते थे, घोड़े के वे अच्छे सवार थे, और अंग्रेजी नाच तथा स्केटिंग में बडे निपुण। टेनिस और बिलियर्ड का भी उन्हें शौक था। पश्चिमी सभ्यता में इस प्रकार ओत-पोत रंग जाने पर भी अंग्रेजी खाने और शराब पीने के बीच में सदा पितामह और माता की धर्मनिष्ठा के सस्कारो की अलघ्य दीवाल उनके सामने रही। वेश्याओ का नाच और गाना उन्होने बहुत सुना, पर उस ओर और कदम बढाने में पत्नी का प्रेम और माता को दिये हुए वचन सदा बाधक रहे।

माता को दिये हुए इस वचन का एक इतिहास है। गोविन्ददास के चचा-ज़ात भाई जमनादास के विवाह में दिल्ली की बिब्बोजान नामक एक वेश्या आयी थी। इस विवाह के अवसर पर गोविन्ददास की अवस्था करीब अठारह वर्ष की थी। बिब्बोजान के गान और हावभाव का युवक गोविन्ददास पर काफी प्रभाव पडा और सार्वजनिक महफिल के बाद एक प्राइवेट महफिल की तजवीज की गयी। यह महफिल 'राजा गोकुलदास महल' के बादल महल नामक हिस्से में हुई, जहाँ गोविन्ददास रहते थे।

सेठ गोविन्ददास

अवस्था १६ वर्ष, सन् १९१२

सेठ गोविन्ददास

अवस्था १८ वर्ष, सन् १६१४

सारंगी के स्वरों के साथ बिब्बोजान की तानें और तबले की ठनक के साथ उसके घुंघरू की आवाज़ गोविन्ददास के माता जी के कक्ष तक पहुँचे बिना न रही। बादल महल से आनेवाली इस स्वर लहरी ने उनके तप्त हृदय में ज्वाला उठाने के लिए आँधी का काम किया। वे सिंहनी के समान बादल महल की ओर झपटीं और दस पाँच लुच्चो की उस प्राइवेट महफ़िल से हाथ पकड़कर गोविन्ददास को उठा लिया। अठारह वर्ष के युवक गोविन्ददास को माता का उतना ही भय रहता था, जितना पाँच वर्ष के बच्चे को रहता है। गोविन्ददास माता की आज्ञा पाकर बिना कुछ कहे चुपचाप उनके पीछे पीछे चल दिये। महफ़िल का सारा रग किरकिरा हो गया। एक ओर बिब्बोजान अपने तबलची और सारंगीवालो के साथ चली और दूसरी तरफ प्राइवेट महफ़िल के वे गुण्डे ऐसे सटके कि ढूँढ़ने से भी उनका पता लगना कठिन था। बादल महल की प्राइवेट महफ़िल का वह बादल ऐसा तितरबितर हुआ कि बादल महल में फिर से वह आज तक न उठ सका।

जब गोविन्ददास माता के कक्ष मे उनके पीछे पीछे पहुँचे तब माता काँप रही थी क्रोध से, और गोविन्दास काँप रहे थे भय से। वे गरज कर बोली—

"मैं तेरे पीछे सवा हाथ की नाक लिए घूमती हूँ। जीवन भर मे मैंने बहुत सहा है, इतना सहा है कि अब सहनशक्ति नहीं रही। इन वेश्याओ ने सोने के इस घर को मिट्टी का बना दिया। यदि मुझ मे शक्ति होती तो मैं इनकी सार्वजनिक महफिलो को रोक

देती, वेश्या का नाम निशान मिटा देती। वह तो मैं कर नहीं सकती। पर जिस तेरे कारण मैं सवा हाथ की लम्बी नाक लिये घूमती हूँ, वही क्या मेरी नाक कटा देगा; तू भी अब प्राइवेट महफिलें करायेगा ?"

माताजी का सारा क्रोध दुःख में विलीन हो गया। वे खड़ी न रह सकी, बैठ गयी और फूट फूट कर रोने लगीं। गोविन्ददास भी रोते रोते उनके चरणो पर गिर पड़े और उन्होने प्रतिज्ञा की कि इसके वाद कभी भी वे ऐसी हरकत न करेंगे।

गोविन्ददास के जीवन में इस घटना का महान स्थान है और इसीलिए उसका यहाँ उल्लेख किया गया है।

[३]

बढ़ती हुई साहित्यिक प्रवृत्ति ने गोविन्ददास जी को साहित्य-सग्रह और साहित्य-रचना के लिए प्रेरित किया। उन्होने हिन्दी और अग्रेजी दोनो ही भाषाओं के ग्रन्थो का एक सुन्दर संग्रह किया और थोडे ही दिन वाद 'शारदा-भवन पुस्तकालय' नामक एक पुस्तकालय खोला। कुछ पद्य, तथा गद्य में कुछ उपन्यास उन्होने पहले भी लिखे थे, परन्तु अब वे गभीरता-पूर्वक इस ओर मुडे और नाटक रचना को उन्होने अपना मुख्य विषय बनाया। नाटको से उन्हें वाल्यावस्था से ही रुचि थी। हिन्दी और हिन्दी के द्वारा बंगला तथा अग्रेजी नाटको का उन्होने अच्छा अध्ययन किया था। सन् १९१७ मे उन्होने 'विश्वप्रेम' नामक एक सुन्दर नाटक लिखा जो शारदा-भवन पुस्तकालय के वार्पिकोत्सव के अवसर पर सफलता-पूर्वक खेला भी गया। सन् १९१७ में ही जवलपुर में अखिल

भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन में पं० माधवराव जी सप्रे जबलपुर आये। लोकमान्य तिलक के 'गीता रहस्य' तथा समर्थ स्वामी रामदास के 'दास बोध' ग्रन्थ के अनुवाद सप्रेजी ने हाल ही मे किये थे, जिन्हें पढ़कर गोविन्ददासजी को सप्रेजी पर बड़ी श्रद्धा हो गयी थी। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर सप्रेजी और गोविन्ददास जी की पहली मुलाकात हुई। गोविन्ददासजी के सार्वजनिक जीवन-प्रवेश मे यह साक्षात्कार एक खास जगह रखती है।

पंडित विष्णुदत्त जी शुक्ल इस समय मध्यप्रान्त के सार्वजनिक जीवन के अग्रगण्य नेता थे। यद्यपि शुक्लजी और गोविन्ददास जी के घराने का बड़ा पुराना सम्बन्ध था, तथापि शुक्लजी और गोविन्ददास जी का भी व्यक्तिगत सम्बन्ध इसी सम्मेलन के अवसर पर हुआ और गोविन्ददास जी के सार्वजनिक जीवन-प्रवेश में यह सम्बन्ध भी एक विशेष स्थान रखता है।

जबलपुर के बाद सन् १९१८ मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पटना में हुआ। इस सम्मेलन के सभापति पंडित विष्णुदत्त जी शुक्ल थे। गोविन्ददास जी शुक्लजी और सप्रेजी के साथ पटना गये। वहाँ उन्होंने हिन्दी साहित्य की वृद्धि के लिए शारदा-भवन पुस्तकालय को राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर बनाने की घोषणा की और इस संस्था को पचीस हजार रुपया देने का वचन दिया। जबलपुर लौटकर अपने चाचा दीवान बहादुर वल्लभदास जी से भी उन्होंने राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर को पचीस हजार रुपया दिलवाया।

छोटे से शारदा-भवन पुस्तकालय का कायापलट हो गया।

पुस्तकालय के साथ ही एक प्रेस खोला गया, जिससे 'श्री शारदा' मासिक पत्रिका और 'शारदा पुस्तकमाला' प्रकाशित होना आरम्भ हुआ।

उसी समय जबलपुर से एक साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' निकलना शुरू हुआ। इस पत्र के सम्पादक हुए पंडित माखनलाल चतुर्वेदी और सञ्चालक हुए सप्रेजी। गोविन्ददास जी भी कर्मवीर कंपनी के एक डायरेक्टर थे।

सन् १९१९ में सागर में मध्यप्रान्तीय राजनैतिक परिषद और मध्यप्रान्तीय-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन था। उपर्युक्त साहित्य सेवाओं के उपलक्ष में गोविन्ददास जी इस सम्मेलन के सभापति चुने गये।

मध्यप्रांत के भावी नेता सेठ गोविन्ददास जी के सार्वजनिक जीवन का यथार्थ आरम्भ यही से हुआ और सच बात तो यह है कि सेठ गोविन्ददास जी के सार्वजनिक जीवन का यथार्थ आरम्भ ही जबलपुर एवं महाकोशल के सार्वजनिक जीवन का सच्चा आरम्भ है। यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि सेठ गोविन्ददास जी के सार्वजनिक जीवन का आरम्भ तथा महाकोशल के सार्वजनिक जीवन का आरभ दोनो पर्यायवाची वाक्य हैं।

चौथा अध्याय

सन् १९२० का असहयोग आन्दोलन

किसी भी कार्य का कारण होता है; फिर क्रान्ति सदृश महान् घटना के पीछे कारण न हो, यह कैसे सम्भव है? संसार की क्रान्तियाँ छोटे मोटे नहीं, किन्तु महान् कारणो का परिणाम हैं। क्रान्ति का काल उस क्रान्ति का नेता लाता है, या काल नेता को उत्पन्न करता है, इस विषय मे तत्ववेत्ताओ में मतभेद है। जो कुछ हो, पर क्रान्ति और नेता का अन्योन्य सम्बन्ध है। कोई महान् क्रान्ति किसी महान् नेता बिना सम्भव नही और कोई महान् नेता किसी महान् क्रान्ति के बिना नही हो सकता।

भारतवर्ष सदियो से पराधीन चला आता है। परन्तु पराधीनता के दुःख का अनुभव जैसा उसने अंग्रेजी राज्य में किया, वैसा इसके पहले कभी न किया था। यूनानियो, शकों और हूणों ने उसे पराधीन बनाना आरम्भ किया, पर यूनानी तो यहाँ टिक ही न सके और शक तथा हूण इसी देश के समाज मे विलीन हो गये। सर्व प्रथम पराधीनता का अनुभव इसे मुसलमानो के राज्य मे हुआ, परन्तु कुछ सदियो बाद मुसलमान भी विदेशी न रहे। उन्होने इसी देश को अपना देश बना लिया। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का राज्यकाल मुस्लिम राज्य काल होने पर भी यथार्थ में भारतीय

राज्य काल ही था। अंग्रेज़ जब आये तभी विदेशी थे, इतना ही नहीं, आज भी विदेशी हैं और जब तक रहेंगे विदेशी ही रहेंगे। मुसल्मानो का राज्य काल भारतीय बन जाने के कारण ही वह राज्य इतने दीर्घ काल तक चल सका। अंग्रेज़ी राज्य की जड़ें इतने शीघ्र हिलने का मुख्य कारण उसका विदेशी राज्य होना है।

भारत ने सदा ही आज़ाद होने की कोशिश की। यूनानियो से चन्द्रगुप्त ने उसे स्वतत्र किया। शको और हूणो को तो यह देश निगल ही गया और मुसल्मान भी तभी शान्तिपूर्वक टिक सके जब वे इसके हो गये। फिर भी जिस तरह शक और हूण इस देश के समाज में मिल गये थे उस तरह मुसल्मान न मिल सके। उनका पृथक धर्म था और पृथक सभ्यता। जब जब इस पृथकत्व का प्रदर्शन होता था, तब तब उसके विरुद्ध विसव। औरंगज़ेब के समय मराठो और राजपूतों के उत्थान और उसके बाद ही मुग़ल साम्राज्य के टुकड़े टुकडे हो जाने का यही सबब था।

अंग्रेज़ो ने भारत को मुसल्मानों से न लेकर यथार्थ में हिन्दुओं से लिया था; और वह बल से नही, कौशल से। राज्य हाथ में आने पर उसकी रक्षा भी बल से न करके कौशल से ही की गयी।

अपनी सत्ता को कायम रखने के लिए अंग्रेज़ों का 'डिवाइड एण्ड रूल' सबसे प्रधान शस्त्र है। इस शस्त्र के उपयोग के लिए इस देश का वायु-मण्डल सर्वथा उपयुक्त था, और आज भी है। इतने पर भी अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के थोड़े ही दिन बाद सन् १८५७ का युद्ध हुए बिना न रहा। जिसे अंग्रेज़ सिपाही-विद्रोह कहते हैं, वह यथार्थ में स्वतन्त्रता-संग्राम था। फिर से ऐसी

घटना न घट सके, अब इसके उपाय हुए। फ़ौज में केवल राजभक्त जातियों की भर्ती, और जनसमुदाय से आर्म्स एक्ट द्वारा सारे शस्त्रो का अपहरण तथा शस्त्र रखने की मुमानियत इन उपायो में से दो प्रधान उपाय थे। परन्तु स्वातंत्र्य-प्रिय भारत का, उस भारत का, जिसमे समस्त संसार के एक पंचमांश जनसमुदाय का निवास है, सात समुद्र पार से आये हुए मुट्ठी भर अंग्रेजो के सदा अधिकार मे रहना एक अस्वाभाविक, महान अस्वाभाविक बात थी। पराधीनता के अपमान, वैज्ञानिक लूट, और उसके कारण गरीबी के दारुण दुःख, से यह देश तलमला उठा था।

लोकमान्य तिलक आदि अनेक नेताओ ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है', यह बात इस देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, इस देश के निवासियो को समझा दी थी और उस अधिकार की प्राप्ति के लिए महान बलिदान कर करके देश-निवासियो के हृदय में साहस और त्याग के बीज बो दिये थे।

सन् १९२० इस बीज के पल्लवित और फलित होने के लिए सबसे अच्छा समय था। योरोपीय महायुद्ध मे सहायता देने के उपलक्ष में पंजाब का हत्याकाण्ड हो चुका था। स्वराज्य देने के वचन के बदले में माण्टफोर्ड रिफार्म की स्कीम का प्रयोग होने वाला था। धर्म-प्रिय मुसल्मानो के हृदय को खिलाफत के मामले से बड़ी भारी ठेस पहुँचायी गयी थी।

क्रान्ति के कारण मौजूद थे। नेता की आवश्यकता थी और देश को महात्मा गान्धी के रूप में महान् नेता मिल गया। देश के अनुरूप ही नेता की आवश्यकता होती है। महात्मा गान्धी ठीक

वैसे नेता थे, जैसे नेता की भारत को ज़रूरत थी। भारतीय धर्म, सभ्यता और सस्कृति को घृणा से देखने वाला, टोप, कालर और नेकटाई पहनने वाला, भारतीय भाषाओ को जगलियो की भाषा मानने वाला, कबाबी, शराबी या व्यसनी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही बुद्धिमान और साहसी क्यो न होता, भारत का नेता न हो सकता था। महात्मा गान्धी में बुद्धि और साहस के साथ ही चरित्र था, महान चरित्र था। वे भारतीय थे, ओत प्रोत भारतीय, सच्चे भारतीय।

देश सदियो से गुलाम था, गरीब था, निःशस्त्र था। स्वतन्त्र होने की इच्छा होते हुए भी उसके पास स्वतन्त्र होने के साधन न थे। जिस राज्य में सूर्य अस्त न होता था उस राज्य से मोर्चा! जिस राज्य की सेनाओं ने जर्मनी सदृश शक्तिशाली राष्ट्र को पराजित किया था, उस राज्य की सेनाओ से मुकाबला! छोटी बात न थी।

महात्मा गान्धी ने इस मोर्चे के लिए, इस मुकाबले के लिए, नये साधन बताये—सत्य तथा आत्मिक बल और अहिंसा। आत्मिक बल पाशविकता से, और सत्य तथा अहिंसा, हिंसा से, सफलता-पूर्वक मोर्चा ले सकती है, सफलता-पूर्वक मुक़ाबला कर सकती है, यह दुनिया के लिए एक नयी बात थी। यह महान अनुष्ठान ससार के लिए एक नवीन प्रयोग था।

महात्मा गान्धी ने इस महान यज्ञ मे आहुति डालने के लिए देश के प्रत्येक व्यक्ति को आमन्त्रित किया। उन्होंने कहा कि आत्मिक बल को जागृत कर, सत्य और अहिंसा के शस्त्र को हाथ में

सेठ गोविन्ददास

अवस्था २२ वर्ष, सन् १९१८

सेठ गोविन्ददास
अवस्था २४ वर्ष, सन् १६२०

ले, प्रत्येक भारतीय को अंग्रेज़ी सत्ता से असहयोग करना चाहिए। स्कूलो, अदालतो, कौंसिलो और विदेशी माल के बायकाट असहयोग क्षेत्र में पहले चार क़दम थे। गान्धी जी की घोषणा थी कि यदि देश उनका साथ देगा तो वे एक वर्ष के भीतर देश मे स्वराज्य की स्थापना कर देंगे।

हिमालय से कन्याकुमारी और अरब समुद्र से बगाल की खाड़ी तक देश के नगर नगर और गॉव गॉव में, महलो और झोपड़ो मे, हर स्थान और हर कोनो में, महात्मा का यह शंखनाद पहुँच गया। परतंत्रता से पीड़ित और स्वतत्रता का इच्छुक देश जागा, पर पूरा नही। हर प्रान्त, हर नगर से इस यज्ञ में आहुति देनेवाले होता निकले, पर सब नहीं। व्यक्तिगत और क्षणिक स्वार्थों की भावनाओं से मुक्त होना साधारण बात नहीं है। कष्ट पाने के लिए सच्चे साहस का प्रादुर्भाव प्रत्येक के हृदय मे नहीं हो सकता।

फिर भी देश में अभूतपूर्व जागृति हुई। जिन अनेको मनचलों ने इस यज्ञ मे अपने सर्वस्व की आहुति देने का संकल्प किया था, उन्हीं में से एक सेठ गोविन्ददास जी भी थे।

[२]

सेठ गोविन्ददास जी का कुटुम्ब राजभक्त कुटुम्ब था। इस राजभक्ति के कारण उस कुटुम्ब मे संपदा और सुख दोनों की ही वृद्धि हुई थी और दोनों की ही रक्षा होती थी। उनके कुटुम्ब मे सकड़ो गॉवो की जमींदारी थी, जिसमें हर क्षण सरकारी सहायता की आवश्यकता रहती थी। उनके घर के व्यापारो में कलकत्ते की ग्लैन्डर्स अरबथनाट कंपनी के विलायती कपड़े की एजेन्सी थी,

जिससे उन्हे लगभग एक लाख रुपये साल की आमदनी थी। उनके गॉवो और दूकानो के सैकडो मुकदमें अंग्रेजी कचहरियो मे चलते थे। फिर सेठ गोविन्ददास जी राजा गोकुलदास जी के एकमात्र नाती तथा अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र होने के कारण जिस लाड़-प्यार और शानशौकत से पाले गये थे, उसका उल्लेख इसके पहले अध्यायो में किया जा चुका है। असहयोगी जीवन उनके अब तक के जीवन के ठीक विरुद्ध दिशा का जीवन था। मखमली गद्दों और बढ़िया से बढ़िया रेशमी वस्त्रो को छोड, टाट के समान मोटी खादी पर सोना और उसे पहनना, चाहे आज साधारण बात हो गयी हो, पर उस समय न थी। आज महीन से महीन और मुलायम से मुलायम सूती, रेशमी और ऊनी खादी मिलती है, पर उस समय यह मवस्सर न था। उस समय तो पूरे अरज की खादी की धोती तक न मिलती थी और बीच में जोड़ डली हुई धोती पहननी पड़ती थी।

सेठ गोविन्ददास जी सच्चरित्र थे और उन्हें कोई व्यसन न था। वे पढ़े-लिखे थे और साहित्य-सेवी थे। पर सच्चरित्र, निर्व्यसनी और साहित्य-सेवी गोविन्ददास जी भी पूरे रईस थे। उनका ठाट-बाट, उनकी रहन-सहन, उनकी वेषभूषा उस समय के बड़े से बड़े भारतीय रईसो के समान थी। दिन में पॉच बार कपड़े बदले जाते थे। कम से कम एक दर्जन नौकर उनकी टहल के लिए नियुक्त थे। यदि वे एक दिन को भी बाहर जाते, तो एक दर्जन नौकरो और दस-पाँच मित्रो के बिना बाहर तक जाने की उनके माता-पिता की आज्ञा न थी।

सच्चरित्र, निर्व्यसनी और साहित्य-सेवी होना एक बात थी और असहयोगी होना बिलकुल दूसरी। फिर कुटुम्ब का एक व्यक्ति भी यह न चाहता था कि वे असहयोगी होकर महान कष्ट पावें, और जिस राज्य के कारण उनके घर की सारी समृद्धि है, उससे विद्रोह कर अगणित संकटों को निमंत्रण दें। उनके पिता दीवान बहादुर जीवनदास जी, उनकी माता, उनकी पत्नी, सभी गोविन्ददास जी के इस संकल्प के कट्टर विरोधी थे।

गोविन्ददास जी को असहयोगी बन अंग्रेज़ी सरकार से ही युद्ध न करना था, पर घर मे भी कलह मोल लेना था। इतना सब होते हुए भी उन्होंने असहयोग आन्दोलन मे भाग लेने का निश्चय किया और उसके लिए सर्वस्व त्याग का संकल्प।

[२]

यद्यपि कलकत्ते की सन् १९२० की स्पेशल कांग्रेस मे असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया था तथापि उस प्रस्ताव पर अमल नागपुर कांग्रेस के बाद होने वाला था। नागपुर कांग्रेस में सम्मिलित होने का सेठ गोविन्ददास जी ने निश्चय किया। इस निश्चय के मालूम होते ही उनके महल में जो तूफान उठा, वह इसके पहले कभी 'राजा गोकुलदास महल' में न उठा था। पिता, माता, पत्नी, नातेदार, घर के पुराने-नये कर्मचारी, सब एक ओर, और अकेले सेठ गोविन्ददास जी एक ओर। रोने-धोने से लेकर आत्महत्या की चर्चा तक, एक भी ऐसी बात नही है जो इस तूफ़ान मे न हुई हो। और वह होकर शान्त हो गई हो यह भी नहीं, आज तक भी होती ही जाती है। परन्तु सेठ गोविन्ददास जी

दृढ़ प्रतिज्ञ और अटल निश्चय के व्यक्ति सिद्ध हुए। वे पर्वत के सदृश अचल रहे। जो गोविन्ददास जी एक प्राइवेट महफिल कराने के अपराध में माता के सामने बेंत के सदृश कॉपने लगे थे, उन्ही गोविन्ददास जी का, उन्ही माता के सम्मुख इस समय पर्वत के समान अचल रहना, इस बात को सिद्ध करता है कि पतन और उत्थान के मार्ग मे कितना अन्तर है। गोविन्ददास जी को नागपुर कांग्रेस मे सम्मिलित होने से कोई न रोक सका। वे नागपुर कांग्रेस में सम्मिलित हुए और उन्होने असहयोग की दीक्षा ले ही ली। असहयोग की दीक्षा लेते ही उन्होंने सबसे पहले अपनी आनरेरी मजिस्ट्रेटी, दरबारी होने के पद तथा डिस्ट्रिक्ट कौंसिल की नामज़दी मेम्बरी से इस्तीफ़ा दिया।

असहयोग में सम्मिलित होने पर इन पदों को छोड़ना जितना सरल था, उतना ही कठिन उसके कार्यक्रम को कार्यरूप में परिणित करना था। साधारण स्थिति के लोगो की दूसरी बात थी। जो मोटा लट्ठा पहनते थे, उन्होंने मोटी खादी पहन ली। जिनके पास ज़मीदारी न थी, उन्हें सरकार से दुश्मनी करने में जेल जाने ही का भय था। सपत्ति का जाना, जेल की चाहर दीवारी में बन्द रहने की अपेक्षा कहीं अधिक कष्टप्रद है। जिनके घर मे विलायती कपडे का व्यापार न था, वे गला फाड़ फाड कर विलायती कपड़े के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार का आन्दोलन सहज मे कर सकते थे। जिनके कोई मुकदमे न चलते थे, उन्हें अंग्रेज़ी न्यायालयों के बायकाट की दुहाई देने में क्या लगता था। सेठ गोविन्ददास जी भी चाहते तो स्वयं असहयोगी बने रहते और ये सारे कार्य उनके

पिता के नाम पर चलते रहते, परन्तु वे तो असहयोग मे सच्ची लगन और शुद्ध भावनाओ से आये थे। वे देश के लिए असहयोग के समस्त कार्यक्रम को आवश्यक समझते थे और मानते थे कि देश का उद्धार उस कार्यक्रम को ईमानदारी से कार्यरूप में परिणित करने पर अवलम्बित है।

अत्यधिक कष्ट होने पर भी उन्होने मोटी खादी को पहना। मोटी धोती के सबब से शुरू शुरू मे तो उनकी मुलायम चमड़ी मे कमर के आसपास घाव तक हो गये। जो मुकदमे उनके नाम पर चलते थे, उन्हें उन्होंने वापस ले लिया और नया मुकदमा दायर करना बन्द कर दिया। सबसे बड़ा झगड़ा हुआ कलकत्ते की रलैन्डर अरबथनाट कपनी की विलायती कपड़े की एजेन्सी छोड़ने में। दीवान बहादुर जीवनदास जी का और उनका इस विषय पर ऐसा वादविवाद हुआ जैसा इसके पहले कभी भी न हुआ था। पिता-पुत्र का यह झगड़ा दिनो नहीं, महीनो चला, पर अन्त में सेठ गोविन्ददास जी विजयी हुए। दीवान बहादुर साहब को लाख रुपये की इस वार्षिक आमदनी को लात मार देना पड़ा। कलकत्ता क्या, हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से मे इतनी बड़ी आमदनी का विलायती कपड़े का व्यापार किसी भी व्यापारी ने न छोड़ा था।

[४]

सेठ गोविन्ददास जी अपने नगर के ही नही, परन्तु सारे प्रान्त के सफल और सर्वमान्य नेता सिद्ध हुए। उनका कुटुम्ब मध्यप्रान्त के व्यापारी समाज का सर्वश्रेष्ठ कुटुम्ब था। धन एव दान के कारण इस कुटुम्ब की सारे प्रान्त मे अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। सेठ

गोविन्ददास जी का व्यक्तित्व भी कम आकर्षक और प्रभावशाली न था। उनके सरल स्वभाव और मृदु भाषण के कारण सभी उनके प्रति आकृष्ट होते थे। फिर उनमे गर्व छू तक न गया था और असहयोग में सम्मिलित होने के पूर्व जितना ठाट-बाट था, उतनी ही अब सादगी आ गयी थी। ये साधारण जन-समुदाय के लिए कम आकर्षक चीज़ें न थी। वे बड़े प्रभावशाली वक्ता भी थे। उनके भाषण में जहाँ एक ओर यथेष्ट विद्वत्ता रहती थी, वहाँ दूसरी ओर काफ़ी जोश भी रहता था। जिन सभाओं में वे भाषण देते थे, उनमें हज़ारों की भीड़ होती थी, और जो उनका भाषण सुन लेता था वह वर्षों उसे याद भी रखता था। अपने परिश्रम, स्वभाव और घड़ी के कॉटे के सदृश चलने की आदत ने भी उनके इस नेतृत्व में बड़ी सहायता की। उन्होंने प्रान्त में कांग्रेस संघटन के लिए घोर परिश्रम किया। नगर नगर एव गॉव गॉव वे घूमे। एक एक दिन में दस दस और बारह बारह मील की गाँवो की पगदडियों से पैदल यात्रा की। फल यह हुआ कि कुछ ही महीनों में मध्यप्रान्त के हिन्दुस्तानी भाषा भाषी ज़िलों में, जहाँ अब तक कोई सार्वजनिक जीवन ही न था, कांग्रेस एक जीती जागती सस्था बन गयी।

नागपुर कांग्रेस मे पडित विष्णुदत्त जी शुक्ल का देहावसान हो गया था। नागपुर में ही कांग्रेस ने भाषा के अनुसार प्रान्तो का विभाजन किया था। मध्यप्रान्त के हिन्दी भाषा भाषी ज़िलो को नेता की आवश्यकता थी और उसने सेठ गोविन्ददास जी के रूप मे सफल, सर्वमान्य और यशस्वी नेता को पा लिया। प० माधवरावजी

सम्रे, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी, बाबू श्यामसुन्दर जी भार्गव, मि० ई० राघवेन्द्र राव, ठाकुर छेदीलाल जी आदि अनेक व्यक्तियों ने इस समय सेठ गोविन्ददास जी के सच्चे सहायकों का कार्य किया।

सन् १९२१ में महात्मा गान्धी जबलपुर पधारे। इस समय सेठ गोविन्ददास जी ने तिलक स्वराज्य फंड में दस हज़ार रुपया दिया। सेठ गोविन्ददास जी के त्याग और कार्य से उन्हें भी परम प्रसन्नता हुई और उन्होंने 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' में सेठ गोविन्ददास जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सन् १९२१ के मई महीने में मध्यप्रान्त के हिन्दी भाषा भाषी ज़िलों का कांग्रेस संघटन सुचारु स्थिति को पहुँच गया। यह हो जाने पर मध्यप्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का प्रथम अधिवेशन जबलपुर में किया गया। उसकी स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे सेठ गोविन्ददास जी। इसी वर्ष वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भी चुने गये और तब से अब तक बराबर वे उसके सदस्य चले आये हैं।

सन् १९२१ के नवम्बर मास तक असहयोग आन्दोलन की दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हुई। दिसम्बर में अहमदाबाद की कांग्रेस थी, पर इसके पहले आन्दोलन ने और ज़ोर पकड़ा। संयुक्तप्रान्त और बंगाल के स्वयंसेवक दल ग़ैरक़ानूनी घोषित किये गये और संयुक्तप्रान्त तथा बंगाल में घोर दमन आरम्भ हुआ। पंडित मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी तथा अली बन्धु इसी नवम्बर में संयुक्तप्रान्त में, देशबन्धु दास बंगाल में और लाला

लाजपतराय पंजाब में गिरफ्तार हुए। मध्यप्रान्त मे गोविन्ददास जी की गिरफ्तारी की रोज़ ही ख़बर फैलती थी, परन्तु मध्यप्रान्त की सरकार ने इस आन्दोलन में दमन शस्त्र का उपयोग ही न किया और सेठ गोविन्ददास जी की महान् इच्छा रहते हुए भी उन्हे इस आन्दोलन में जेल जाने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका।

सेठ गोविन्ददास जी के राजनैतिक जीवन प्रवेश से उनके घर को तो असीम हानि हुई ही, परन्तु उनके साहित्यिक कार्य को भी बहुत हानि पहुँची। उनका साहित्यिक अध्ययन एव लेखन ही बन्द नहीं हुआ, परन्तु राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर की भी मृतप्राय दशा हो चली।

साहित्य-सेवियो को सेठ गोविन्ददास जी का राजनैतिक जीवन बड़ा अरुचिकर प्रतीत हुआ, परन्तु इसके विपरीत उनके माहेश्वरी समाज के सुधारको को उनके इस जीवन से बड़ी स्फूर्ति मिली।

अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी महासभा के अकोला अधिवेशन के सेठ गोविन्ददास जी सभापति चुने गये। यहाँ से गोविन्ददास जी का समाज-सुधारको मे भी एक विशेप स्थान हो गया। इसके बाद वे दो बार और अखिल भारतवर्षीय माहेश्वरी सभा तथा कई प्रान्तीय माहेश्वरी सभाओ के अध्यक्ष हुए। उन्होंने माहेश्वरी महासभा के द्वारा माहेश्वरी समाज की भी सेवा आरम्भ की और माहेश्वरी महासभा के प्रस्तावो के अनुसार अपने घर में भी अनेक समाज-सुधार किये।

साहित्य, राजनीति और समाज-सुधार के क्षेत्र के अतिरिक्त
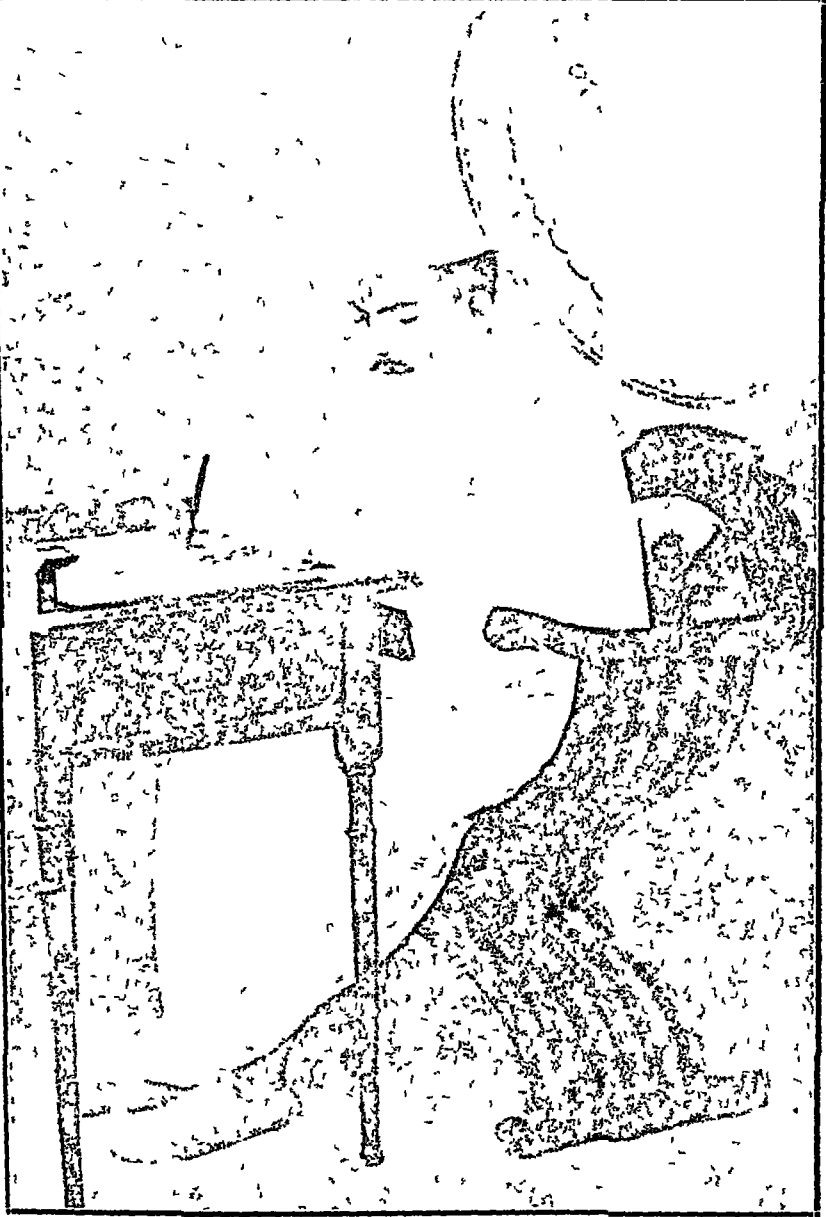
सेठ गोविन्ददास

अवस्था २५ वर्ष, सन् १९२१

सेठ गोविन्ददास
अवस्था ३० वर्ष, सन् १९२६

अन्य जन उपयोगी कार्यों में भी वे यथासाध्य सहायता करते रहे। ऐसे छोटे छोटे कार्यों की तो गिनती ही नहीं, पर इस दिशा मे भी अनेक बड़े बड़े काम हुए। सन् १९२२ में जबलपुर में भीषण प्लेग हुआ था। उस समय एक ग़ैर सरकारी प्लेग रिलीफ़ कमेटी ने बड़ा काम किया था। उसके गोविन्ददास जी मंत्री थे। सन् १९२६ में नर्मदा में बाढ़ आयी थी। उस समय उन्होंने करीब दस हज़ार रुपया चन्दा एकत्रित कर बाढ़ पीड़ितो को बड़ी सहायता की। सन् १९२८ में जबलपुर में पाले से फ़सल को भारी हानि पहुँची थी। उस समय उन्होने 'दुर्गावती आश्रम' नामक एक आश्रम खोल और उसके लिए करीब पन्द्रह हज़ार का चन्दा एकत्रित कर सूत कतवाकर तथा खादी बुनवाकर कृषकों को सहायता पहुँचायी थी। दुर्गावती आश्रम के कार्य का संचालन करने अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्यकर्ता आये थे।

पाचवाँ अध्याय

कौंसिल युग के छै वर्ष

[१]

संसार में हर एक आरम्भ होनेवाली चीज़ का अन्त भी होता है। युद्धो के सम्वन्ध में भी यही वात है। जिस प्रकार सशस्त्र युद्ध हमेशा नही चल सकते, उसी प्रकार असहयोग का अहिंसात्मक युद्ध भी सदा न चल सकता था। सन् १९२२ में महात्मा गान्धी ने चौराचोरी काण्ड के पश्चात् बारडोली का सत्याग्रह रोक दिया और इसके वाद ही वे गिरफ्तार हो गये। उनके पहले अनेक अखिल भारतीय नेता जेल जा चुके थे। असहयोग से स्कूल, अदालत और कौंसिल के तीनो बायकाट भी पूर्ण रूप से सफल न हुए थे। अतः कांग्रेस विरोधियो ने असहयोग आन्दोलन के असफल होने की दुन्दभी वजाना शुरू किया। असहयोग आन्दोलन से स्वराज्य नही मिला, यह बात सही थी, पर असहयोग आन्दोलन असफल हो गया, यह नही कहा जा सकता। असहयोग आन्दोलन के पहले के किसी आन्दोलन से ऐसी जागृति नही हुई थी। देश के लिए सर्वस्व वलिदान करने के भावों का ऐसा प्रसार किसी आन्दोलन में नही हुआ था। इतने बड़े जनसमुदाय ने इतना त्याग किसी आन्दोलन में नहीं किया था। असहयोग

आन्दोलन से यद्यपि हमें स्वराज्य नहीं मिला, पर हम स्वराज्य के समीप अवश्य पहुँच गये।

महात्मा गान्धी को तो छै वर्ष की सज़ा हुई थी, पर देशवन्धु दास और पंडित मोतीलाल जी नेहरू छै महीने के लिए ही जेल भेजे गये थे। सन् १६२२ के मध्य में ये दोनो जेल से निकले और अब इस वात पर विचार आरम्भ हुआ कि आगे क्या किया जाय।

सत्याग्रह कहाँ और कैसे हो सकता है, इसकी जाँच करने के लिए 'सत्याग्रह जाँच कमेटी' नामक एक कमेटी वैठायी गयी। कमेटी ने सारे देश में दौरा किया और गवाहियाँ ली। कमेटी की रिपोर्ट मे एक मत न था। कुछ सदस्यो की राय थी कि सत्याग्रह हो सकता है, कुछ की राय थी कि सत्याग्रह नही हो सकता, अतः सन् १६२३ के चुनाव मे कांग्रेस को कौंसिल-प्रवेश करना चाहिए। देश मे भारी विचार संघर्ष आरम्भ हुआ। कौंसिल प्रवेश के पक्ष मे देशवन्धु दास, पंडित मोतीलाल जी और विट्ठल भाई पटेल सदृश नेता थे तथा उसके विपक्ष मे थे चक्रवर्ती राज गोपालाचार्य, डाक्टर अन्सारी और गान्धीवाद के सभी कट्टर अनुयायी।

सन् १६२२ के दिसम्वर मे गया में कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। इसके सभापति थे देशवन्धु दास। कौंसिल-प्रवेश पर वड़ी गरमागरम वहस हुई, पर अन्त मे कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध कांग्रेस ने अपना निर्णय दे दिया।

इतने पर भी इस वादविवाद का अन्त न हुआ। देशवन्धु दास और पंडित मोतीलाल जी ने कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य पार्टी की रचना की। सेठ गोविन्ददास जी स्वराज्य पार्टी में सम्मिलित

हुए और मध्य प्रान्तीय स्वराज्य पार्टी के सभापति तथा अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी के खजान्ची नियुक्त हुए । हाँ, स्वराज्य पार्टी में सम्मिलित होने के पूर्व यह बात गोविन्ददास जी ने देशबन्धु दास और पडित मोतीलाल जी नेहरू को स्पष्ट कह दी थी कि वे स्वय चुनाव में तब तक खड़े न होगे, जब तक कांग्रेस स्वराज्य पार्टी को चुनाव लड़ने की आज्ञा न दे देगी ।

धन्यवाद है ईश्वर को कि कांग्रेस का यह गृह-कलह अधिक न बढ़ पाया और सन् १६२३ के मध्य मे दिल्ली में कांग्रेस के स्पेशल अधिवेशन ने स्वराज्य पार्टी को कौंसिलो मे जाने की इजाज़त दे दी। सन् १६२३ का चुनाव स्वराज्य पार्टी ने लड़ा। केन्द्रीय असेम्बली में मध्यप्रान्त के ज़मींदारों की ओर से सेठ गोविन्ददास जी निर्विरोध चुन लिये गये।

[२]

असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के पश्चात् और केन्द्रीय असेम्बली में जाने के पूर्व सेठ गोविन्ददास जी के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना और घटी, जिसका प्रभाव केवल उनके जीवन पर पडा हो, इतना ही नही, सारे मध्यप्रान्त के राजनैतिक जीवन पर पड़ा। यह थी गोविन्ददास जी और पडित द्वारकाप्रसाद जी मिश्र की मैत्री।

नागपुर कांग्रेस मे जिस समय गोविन्ददास जी असहयोग मे सम्मिलित होने के लिए पहुँचे थे, उसी समय पडित द्वारकाप्रसाद जी भी अपना कालेज छोड़ नागपुर गये थे। पडित माधवराव जी सप्रे का गोविन्ददास जी और मिश्र जी दोनो से ही घनिष्ट

सम्बन्ध था। मिश्र जी की विलक्षण बुद्धि एवं त्यागमय हृदय से सप्रे जी अपरिचित न थे। सप्रे जी ने गोविन्ददास जी और मिश्र जी का परिचय कराया और कांग्रेस अधिवेशन के बाद कांग्रेस का इतिहास लिखने के लिए मिश्र जी को जबलपुर के राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर मे भेज दिया। कांग्रेस के इतिहास लिखने के लिए जिस सामग्री की आवश्यकता थी वह मिश्र जी को राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर में न मिल सकी, पर यहाँ रहते हुए उनका और गोविन्ददास जी का परस्पर स्नेह बढ़ने लगा। थोड़े दिन यहाँ रहने के बाद मिश्र जी संपादन कला सीखने के लिए अमृत बाज़ार पत्रिका के यशस्वी सपादक बाबू मोतीलाल घोष के पास कलकत्ते चले गये। कलकत्ते में मिश्र जी गोविन्दास जी की गद्दी पर ठहरे, अतः कलकत्ते रहते हुए भी गोविन्ददास जी और मिश्र जी का सम्बन्ध बढ़ता ही रहा। कलकत्ते से लौटने पर गोविन्ददास जी ने मिश्र जी से अपने साथ ही रहने के लिए कहा। दोनो का परस्पर स्नेह बढ़ ही रहा था। गोविन्ददास जी के प्रस्ताव को मिश्र जी ने स्वीकृत कर लिया और फिर तो अब तक दोनों की ऐसी मैत्री रही, ऐसा साथ रहा, जैसा इस ज़माने में विरले ही मनुष्यो के बीच देखने को मिलता है।

मध्यप्रान्त मे ही नहीं अब तो सारे देश में इस मैत्री की चर्चा है और मध्यप्रान्त के राजनैतिक जीवन का तो यह संग प्राण ही हो गया है।

[३]

सन् १९२४ से केन्द्रीय असेम्बली मे सेठ गोविन्ददास जी ने पडित मोतीलाल जी के नेतृत्व में कार्य करना आरम्भ किया। अन्य

कांग्रेसवादियों के सदृश गोविन्ददास जी को भी धारा सभाओ में कार्य करने का कोई अनुभव न था। वे सभापरण में बड़ी अच्छी अंग्रेज़ी बोल लेते थे, पर भाषण देने का काम अब तक हिन्दी में ही पड़ा था। अंग्रेज़ी मे पहला भाषण उन्होने असेम्बली में ही दिया। पहली बार उन्होने लिखित भाषण पढ़ा। भाषण की ठोस सामग्री के अतिरिक्त उनके बोलने के ढंग और अंग्रेज़ी के उच्चारण का श्रोताओ पर बडा अच्छा प्रभाव पड़ा।

असेम्बली मे गोविन्ददास जी केवल दो वर्ष रह सके और इन दो वर्षों मे उन्होने वहाँ सिर्फ़ दो भाषण दिये। एक 'ली कमीशन' और दूसरा 'मुडीमैन कमेटी' की रिपोर्ट पर। दोनो भाषणो की समाचार पत्रो में काफी प्रशसा हुई। सन् १९२५ के अन्त में गोविन्ददास जी को कौंसिल आफ़ स्टेट मे जाना पड़ा। असेम्बली छोड़कर कौंसिल आफ स्टेट में जाने का एक विशेष कारण का।

[४]

जिस समय मध्यप्रान्त की गवर्नरी की गद्दी पर सर मांटेगु बटलर बिठाये गये, उस समय मध्यप्रान्त की धारा सभा में स्वराज्य पार्टी का बहुमत था। सन् १९२३ के चुनाव में बगाल और मध्यप्रान्त दो ही प्रान्तो की कौंसिलो मे स्वराज्य पार्टी बहुमत में गयी थी। स्वराज्य पार्टी का यह बहुमत सरकार को बहुत खटकता था, क्योकि उस समय के स्वराज्य पार्टी के कार्यक्रम के अनुसार इन दोनो प्रान्तों में मिनिस्ट्री न बन सकी थी। सर मांटेगु बटलर के सदृश कुशल राजनीतिज्ञ को मध्यप्रान्त के सदृश छोटे से प्रान्त की गद्दी कदाचित इसीलिए दी गयी थी कि छोटी गद्दी पर बैठकर

भी वे कोई बड़ा काम कर दिखावेंगे। यह बड़ा काम था मध्यप्रान्त मे स्वराज्य पार्टी के टुकड़े करके मंत्रिमंडल की स्थापना।

उस समय मध्यप्रान्त के होम मेम्बर थे—सर मोरोपंत जोशी, परन्तु उनकी अवधि शीघ्र ही पूरी होने वाली थी। उनके स्थान पर कोई न कोई कांग्रेसवादी होम मेम्बर बनाया जायगा, इसकी प्रान्त में गरम ख़बर थी।

गरमी की मौसम में जब यह ख़बर और गरम हुई तब मध्यप्रान्त की सरकार पचमढ़ी की ठंढक में निवास करती थी। वहाँ ठंडे दिमाग़ से इस गरम ख़बर को कार्य रूप मे परिणित करने का प्रयत्न चल रहा था। सेठ गोविन्ददास जी भी सकुटुम्ब पचमढ़ी हवाखोरी को गये हुए थे।

एक दिन जब पिकनिक के लिए गोविन्ददास जी 'फुलरखड्ड' नामक स्थान पर थे, तब वहाँ कई अंग्रेज़ अफ़सर अपनी मेमों के साथ आ पहुँचे। कुछ गोविन्ददास जी को जानते थे और कुछ को गोविन्ददास जी, क्योंकि यद्यपि सन् १९२१ से गोविन्ददास जी ने अफ़सरो से मिलना छोड़ दिया था, तथापि इसके पहले तो उनका इन लोगो से काफ़ी सम्बन्ध रहता था। इस अचानक भेंट में कुछ मेमो से गोविन्ददास जी की पत्नी से भी बातें हुईं और बातो ही बातो में एक उच्च अफ़सर की मेम ने श्रीमती गोविन्ददास को चाय का निमन्त्रण दिया। गोविन्ददास जी की आज्ञा बिना उनकी पत्नी इस निमन्त्रण को स्वीकार न कर सकी और उन्होंने गोविन्ददास जी की ओर देखा। गोविन्ददास जी कुछ कहे, इसके पहले ही एक दूसरे अफ़सर हँसते हुए बोले—

"सेठ जी, आप असहयोगी है, श्रीमती गोविन्ददास तो नही। वे तो अपने ससुर के पद-चिह्नो पर चलती हैं। खादी भी वे नही पहने हैं, आप उन्हे इस निमन्त्रण को अस्वीकृत करने के लिए न कहेंगे।"

गोविन्ददास जी कुछ न बोल सके और उनकी पत्नी को यह निमन्त्रण स्वीकार करना पडा। उस मेम ने यह भी विनय की कि वे अपने पुत्र को भी निमंत्रण में साथ ले आवें।

निमन्त्रण के दिन श्रीमती गोविन्ददास अपनी रईसी वेप-भूषा में, तथा मनमोहनदास को भी उसी प्रकार सजा, उस अफ़सर के बगले पर पहुँच गयी। उनकी वहाँ बड़ी आवभगत और ख़ातिर तसल्ली हुई। अन्य बातो के सिलसिले मे उस मेम ने एक भेद भरी बात भी कह डाली। वह बोली—"आप तो बड़े अच्छे वस्त्र और बड़े बहुमूल्य जेवर पहनती हैं, इस बच्चे को भी अपने खानदान के अनुरूप ही रखती हैं, पर गोविन्दास जी का तो विचित्र हाल है। उनके खादी के कपड़े और इस तरह का मारे मारे घूमना भटकना आपको कैसे पसन्द आता है? देश की सेवा बड़ी अच्छी चीज़ है, पर वह कई ढग से की जा सकती है। यू० पी० में महाराजा साहब महमूदाबाद होम मेम्बर की हैसियत से क्या देश की सेवा नही कर रहे हैं? उनके ख़ानदान की जो इज्ज़त यू० पी० मे है, आपके ख़ानदान की वही इज्ज़त सी० पी० मे है।. गोविन्ददास जी के लिए गवर्नमेन्ट का कौनसा स्थान खाली नही है? हमें यदि इस बात का इशारे से भी पता लग जाय कि जो स्थान यू० पी० मे महाराजा महमूदाबाद को मिला है, वह गोविन्ददास जी

मंजूर कर लेंगे, तो सर मोरोपंत जोशी रिटायर्ड होनेवाले ही हैं, वह स्थान उनके लिए हाज़िर है। आप इस विषय में उनसे बात कर लें और यदि उनकी जरा भी रज़ामन्दी हो तो मुझे कल ही इत्तिला दे दें।"

गोविन्ददास जी की पत्नी ने वहाँ से लौट कर जब यह हाल गोविन्ददास जी को सुनाया तब वे ठठाकर हँस पड़े और बोले—

"यहाँ जाल में फँसनेवाले नहीं हैं। यह प्रयोग किसी दूसरे पर ही किया जाय।"

अन्त में सरकार को यह पद स्वीकार करने वाले एक कांग्रेस-वादी मिल ही गये। ये थे मध्यप्रान्तीय कौंसिल के बरारी दल के नेता मिस्टर तांबे।

सरकार इस पद को किसी कांग्रेसवादी को देकर मध्यप्रान्त की स्वराज्य पार्टी के टुकड़े करना चाहती थी। पहले उसने हिन्दी भाषा भाषी ज़िलों के मुख्य नेता को फँसाना चाहा और जब वहाँ कामयाबी न हुई तब बरार पर जाल फेंका।

मध्यप्रान्त की स्वराज्य पार्टी को तो इस घटना से बड़ा भारी धक्का लगा ही, पर अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी तक को इससे कम धक्का न पहुँचा।

पूना के श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने मि० तांबे को बधाई देने का तार भेजा और उन्हें यह तार भेजना चाहिए था या नहीं इस पर घोर वादविवाद छिड़ गया।

मिस्टर तांबे पर लानत का प्रस्ताव पास करने तथा मिस्टर केलकर से इस प्रकार के तार भेजने पर कैफ़ियत लेने के लिए

नागपुर में अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी की मीटिंग बुलायी गयी। इस मीटिंग मे जो तू-तू मैं-मैं हुई उसे उस मीटिंग में उपस्थित कांग्रेसवादी अब तक भी न भूले होंगे।

इसी समय कौंसिल आफ़ स्टेट का चुनाव था। चूँकि सब तरफ़, और ख़ासकर मध्यप्रान्त में, यह कहा जा रहा था कि अब स्वराज्य पार्टी का कोई प्रभाव नही रह गया है, प० मोतीलाल जी को मध्यप्रान्त में कौंसिल आफ स्टेट के इस चुनाव को जीतने की और यह सिद्ध करने की कि मध्यप्रान्त में भी स्वराज्य पार्टी का वैसा ही ज़ोर है जैसा पहले था, जिद सवार हुई।

नामीनेशन का अन्तिम दिन था। सर मानिक जी दादाभाई और सर हरिसिंह गौर कौंसिल आफ स्टेट के लिए खड़े हो रहे थे। कौंसिल आफ स्टेट के मत-दाताओ में ज़मीदारो और बड़े आदमियों का ही बहुमत था, जो कांग्रेस और स्वराज्य पार्टी से कोसों दूर रहते थे। उन्ही के समुदाय का और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति ही इन दो महारथियो को हरा सकता था अतः पंडित जी ने गोविन्ददास जी की अत्यधिक अनिच्छा रहते हुए भी उन्ही को कौंसिल आफ स्टेट के लिए खड़ा कर दिया।

चुनाव को केवल १७ दिन बाकी थे। सर मानिक जी दादा भाई और सर हरिसिंह गौर की केनवासिंग चलते हुए छै महीने बीत गये थे। वोटर मध्यप्रान्त के अठारह ज़िलो में फैले हुए थे। इतने पर भी गोविन्ददास जी की प्रचण्ड बहुमत से जीत हुई। सर हरिसिंह गौर की तो जमानत भी ज़प्त हो गई। इस चुनाव

के अवसर पर पं० मोतीलाल जी ने सेठ गोविन्ददास जी की प्रशंसा निम्न लिखित वाक्यों में की थी—

"गोविन्ददास तांबा नहीं हैं, वे तपे तपाये, कसौटी पर कसे, खरे और सच्चे सोना हैं।"

[५]

कौंसिल आफ स्टेट के चुनाव के ठीक एक वर्ष बाद ही गोविन्ददास जी को अपने प्रान्त में इससे भी कही बड़ा एक चुनाव और लड़ना पडा। यह चुनाव सन् १९२६ का केन्द्रीय असेम्बली और प्रान्तीय कौंसिल का था।

सन् १९२३ के चुनाव काल और सन् १९२६ के चुनाव काल में बहुत फ़र्क़ हो गया था। सन् १९२३ में सन् १९२० का कांग्रेसवादियो का किया हुआ त्याग नयी घटना थी। जनता के हृदय पर उस त्याग का प्रभाव था। फिर सांप्रदायिकता का सन् १९२३ में ज़ोर न था और कांग्रेस के हिन्दू-मुस्लिम नेताओं में एकता थी, कोई मतभेद न था।

गत तीन वर्षों मे परिस्थिति बिलकुल बदल गयी थी। यद्यपि महात्मा गान्धी जेल से छूट गये थे तथापि उन्हे कौंसिलों के इस कार्य से कोई दिलचस्पी न होने के कारण वे साबरमती आश्रम मे अपने कट्टर अनुयायियो के साथ बैठे हुए विधायक कार्य-क्रम में संलग्न थे। देशबन्धु दास का स्वर्गवास हो गया था। सांप्रदायिकता की लहर हिन्दू और मुसलमान दोनो समुदायों में यहाँ तक ज़ोरो से उठी हुई थी कि पं० मदनमोहन मालवीय और

लाला लाजपतराय सदृश व्यक्ति भी हिन्दू महासभा का नेतृत्व कर रहे थे। तांबे काण्ड के कारण सारा महाराष्ट्र कांग्रेस की कौंसिलों की अडंगा नीति के विरोध करने पर कमर कसे हुए था।

इस बार यद्यपि कांग्रेस ने चुनाव लड़ने का निर्णय, स्वराज्य पार्टी के नहीं, पर अपने नाम से किया था, तथापि पं० मोतीलालजी नेहरू के सिवा कांग्रेस का कोई अखिल भारतीय नेता इस नाव को खेने के लिए तैयार न था।

इस भारतीय परिस्थिति का प्रभाव मध्यप्रान्त पर सबसे अधिक था, क्योंकि यही गत तीन वर्षों तक मिनिस्ट्री न बन सकी थी। कांग्रस के विरोध में मध्यप्रान्त के मराठी भाषा भाषी ज़िलो और बरार में 'रिस्पानसिव कोआपरेशन पार्टी' तथा हिन्दी भाषा भाषी ज़िलों में 'इन्डिपेन्डेन्ट कांग्रेस पार्टी' का निर्माण हुआ था। डाक्टर मुंजे और मिस्टर अणे रिस्पानसिव कोआपरेशन पार्टी के तथा मि० राघवेन्द्रराव इन्डिपेन्डेन्ट कांग्रेस पार्टी के नेता थे। इनके सहायक थे मध्यप्रान्त के सभी पुराने कार्यकर्ता। हिन्दी भाषा भाषी मध्यप्रान्त के प० रविशंकर शुक्ल, ठाकुर छेदीलाल, बाबू श्यामसुन्दर भार्गव आदि सभी कांग्रेस के विरोध में इन्डिपेन्डेन्ट कांग्रेस पार्टी की ओर से मध्यप्रान्तीय कौंसिल के लिए खड़े हुए थे और इन्हें सहायता दे रहे थे प० मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय।

कांग्रेस की ओर से मध्यप्रान्त के मराठी क्षेत्र का नेतृत्व कर रहे थे नागपुर के बैरिस्टर अभ्यंकर और हिन्दी क्षेत्र का नेतृत्व कर रहे थे सेठ गोविन्ददास।

अपने सभी पुराने साथियों के कांग्रेस छोड़ देने और कांग्रेस का विरोध करने पर भी गोविन्ददास जी ने आगे आकर जिस साहस तथा जिस धैर्य के साथ, और जिस प्रकार अपना निज का रुपया पानी के सदृश वहाकर, कांग्रेस के इस संकट काल में कांग्रेस की सेवा की वह मध्यप्रान्त के कांग्रेस के इतिहास मे एक विशेष स्थान रखेगी। उन्होंने दिन और रात को एक मानकर दौरे किये; 'देशवन्धु' नामक दैनिक अखवार निकाला; सैकड़ो सभाओ में भाषण दिये; और क्या नहीं किया। उनके महान कार्य के कारण मालवीय जी और लाला जी के दौरों तक का कोई प्रभाव न पड़ सका।

इस चुनाव में जहाँ मराठी मध्यप्रान्त और वरार मे कांग्रेस वुरी तरह हारी, यहाँ तक कि केन्द्रीय असेम्वली के लिए खड़े हुए स्वयं वैरिस्टर अभ्यंकर डाक्टर मुंजे से हार गये, वहाँ गोविन्ददास जी के प्रयत्न से हिन्दी मध्यप्रान्त में कांग्रेस को पूरी विजय मिली। रायपुर में गोविन्ददास जी ने पं० रविशंकर जी शुक्ल के सदृश व्यक्ति तक को हराकर छोड़ा और जिन पं० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र को अब तक प्रान्त में वहुत कम लोग जानते थे, उन्हें सर हरिसिंह गौर से भी सैकड़ो वोट अधिक दिलाकर केन्द्रीय असेम्वली में चुनवा दिया। इस चुनाव युद्ध में गोविन्ददास जी के जो मुख्य सहायक थे उनमें पं० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र, केशवरामचन्द्र जी खाडेकर, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी, पं० दुर्गाशंकर जी मेहता, सेठ शिवदास जी डागा, श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त, ठाकुर प्यारेलाल सिंह जी, पं० चन्द्रगोपाल जी मिश्र और सेठ दीपचन्द जी गोठी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस चुनाव में हिन्दी मध्यप्रान्त में करीव साठ हज़ार रुपया ख़र्च हुआ था। इसमें से दस हज़ार तो पं० मोतीलाल जी से प्राप्त हुआ था और पचास हज़ार गोविन्ददास जी ने अपना निज का ख़र्च किया था। जब चालीस हज़ार ख़र्च करने के बाद गोविन्ददास जी के पास रुपये की कमी हुई तब उन्होंने इलाहाबाद के लाला मनमोहनदास से दस हज़ार अपनी ज़िम्मेदारी पर कर्ज़ तक लिया। दस वर्ष के वाद इस दस हज़ार को चुकाने के लिए गोविन्ददास जी के पिता को अपना पचीस हज़ार का आगासौद नामक गाँव लाला जी के हवाले करना पड़ा, जिसका प्रमाण इस गाँव का रजिस्टर्ड वयनामा है।

[६]

माननीय सेठ गोविन्ददास जी ने सन् १९२६ से १९२९ तक कौंसिल आफ स्टेट के अपने कार्य से यह सिद्ध कर दिया कि वे कैसे निपुण और सफल लेजिस्लेटर हैं। उनके वहाँ के काम की मिकदार अधिक थी इतना ही नहीं, उनका काम भी उत्तम कोटि का था। वहाँ के वे सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं में समझे जाते थे, वरन यह कहना और भी उपयुक्त होगा कि वक्ताओं की श्रेष्ठता में वहाँ पहला नंबर सर फीरोज़ सेठना और दूसरा सेठ गोविन्ददास जी का था। रुपये की विनिमय दर (रेशिओ) और करेन्सी के कानूनो के निर्माण के समय तो गोविन्ददास जी ने अपनी विचक्षण बुद्धि का पूरा परिचय दे दिया। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास तक ने, जो करेन्सी कमीशन के सदस्य और १६ पैंस विनिमय दर के नेता थे,

सेठ गोविन्ददास जी के इस समय के कौंसिल आफ स्टेट के कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की। सेठ गोविन्ददास जी ने कौंसिल आफ स्टेट में इन चार वर्षों में जो कार्य किया उसका संक्षिप्त ब्योरा इस पुस्तक के परिशिष्ट १ मे दिया गया है।

छठवाँ अध्याय

सन् १९३० और ३२ का सत्याग्रह संग्राम

जो क्रान्ति स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए होती है वह स्वतन्त्रता प्राप्त हुए बिना शान्त नहीं हो सकती। इस क्रान्ति का युग चाहे लम्बा हो या छोटा, पर ध्येय की प्राप्ति बिना इसकी समाप्ति असम्भव है। हाँ, जैसा पहले लिखा गया है कि युद्ध सदा नहीं चल सकता, अत: इस प्रकार की क्रान्ति के काल में ध्येय की प्राप्ति तक एक से अधिक युद्ध भी हो सकते हैं। इसीलिए एक अंग्रेज़ कवि ने कहा है—

> "Freedom's battle once begun
> Bequeathed from bleeding sire to son
> Though baffled often yet ever won"

असहयोग का युद्ध समाप्त हो गया था, पर क्रान्ति काल की समाप्ति न हुई थी। धीरे धीरे दूसरे युद्ध के कारण इकट्ठे होने लगे।

माण्टफोर्ड रिफार्म्स के प्रयोग की जाँच दस वर्ष के बाद होनेवाली थी, परन्तु संसार को इस बात का धोखा देने की ज़रूरत के सबब से कि इग्लैण्ड भारत को जल्दी से जल्दी स्वराज्य देने को अत्यधिक आतुर है, निश्चित समय के पहले ही 'साइमन कमीशन'

की नियुक्ति कर दी गयी। इस नियुक्ति की घोषणा ८ नवंबर सन् १९२७ को हुई। कमीशन मे एक भी भारतीय न था। अतः भारत में सभी दलो और पार्टियो ने इस कमीशन के बहिष्कार करने का निश्चय किया। कमीशन का सफल बायकाट हुआ।

अन्य दलों के सदृश कांग्रेस ने कमीशन का बायकाट केवल इस कारण न किया था कि उसमें भारतीय नहीं है, पर इसलिए किया था कि कांग्रेस यह मानती थी कि किसी देश के राज्य-विधान बनाने का हक़ उसी देश को है, अन्य देश को नही। कांग्रेस ने इस कार्य के लिए सर्वदल परिषद बुलाई और इस परिषद ने १९ मई १९२८ को पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारत का शासन-विधान तैयार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की। यह कमेटी 'नेहरू कमेटी' के नाम से प्रसिद्ध हुई और इसकी रिपोर्ट १० अगस्त १९२८ को प्रकाशित हुई।

सन् १९२८ के दिसम्बर में कांग्रेस कलकत्ते मे थी। उसके सभापति थे पं० मोतीलाल जी। सर्वदल परिषद ने यद्यपि नेहरू रिपोर्ट को मंजूर कर लिया था, पर इस कांग्रेस मे भी इस रिपोर्ट पर विचार होनेवाला था।

सन् १९२० में 'गान्धीवाद' का आरम्भ हुआ था। गान्धीवाद का मुकाबला करने अब देश में 'समाजवाद' का जन्म हो गया था। यह समाजवाद कोई नयावाद न था परन्तु कार्ल मार्क्स ने जिस समाजवाद को जन्म दिया था, और जिसका प्रयोग लेनिन के समय से रूस देश में हो रहा था, वही यह समाजवाद था। पं० जवाहरलाल नेहरू इस स्कूल के प्रधान नेता थे।

'नेहरू रिपोर्ट' में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की गयी थी। समाजवादी पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे। कलकत्ता कांग्रेस मे दोनो पक्षो का संघर्ष हुआ। एक पक्ष के नेता थे वृद्ध नेहरू और दूसरे पक्ष के युवक नेहरू।

महात्मा गान्धी कई वर्षों के रिटायरमेन्ट के बाद कलकत्ते की इस कांग्रेस में फिर आगे आए और उन्होंने पं० मोतीलाल जी का समर्थन किया। बड़ी गरमागरम बहस हुई। यदि एक वर्ष के अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जायगा तो कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेगी, नहीं तो फिर कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता ही लेगी, इस शर्त पर कलकत्ता कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकृत कर लिया।

समय जाते क्या देर लगती है। दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, पक्ष पर पक्ष और मास पर मास बीतने लगे। औपनिवेशिक स्वराज्य का कहीं पता न था।

सन १९२९ दिसम्बर में कांग्रेस लाहौर में थी और उसके सभापति चुने गये पं० जवाहर लाल जी।

साइमन कमीशन का सफल बहिष्कार हुआ था। इस बहिष्कार में सब दलों ने सहयोग दिया था। देश के गरम होते हुए वायुमण्डल को शान्त करना था, और भिन्न भिन्न राजनैतिक दलों में जो एकता हो गई थी उसमें फूट डलवाना भी आवश्यक था, अतः साइमन कमीशन की रिपोर्ट निकलने के पहले ही ३१ अक्टूबर १९२९ को वाइसराय ने भारतीय शासन विधान को तय करने के लिए, राउन्ड टेबिल कान्फ्रेन्स की घोषणा कर दी। [illegible] [illegible] पड़ा, आन्तरिक कठिनाई में जो एकता हुई थी वह नष्ट

हो गयी और राउन्ड टेबिल कान्फरेन्स में सम्मिलित हुआ जाय या नहीं, इस पर हममे आपस मे वादविवाद छिड़ गया। कांग्रेस के नेता विना कुछ शर्तों के राउन्ड टेबिल कान्फरेन्स मे सम्मिलित न होना चाहते थे। इतने पर भी समझौते का कोई रास्ता निकालने के लिए ता० २९ दिसम्बर १९२९ को महात्मा गान्धी और पं० मोतीलाल जी वाइसराय लार्ड अरविन से मिले।

जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने भारतीय युद्ध को रोकने की प्रबल इच्छा के कारण दुर्योधन से पॉडवो के लिए पाँच गॉव तक मॉगे थे, उसी प्रकार महात्मा ने लार्ड अरविन से एक छोटा सा आश्वासन माँगा। उन्होने कहा कि हमारी औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग का भारतीय सरकार समर्थन कर दे तो हम कांग्रेस को समझा लेंगे, पर भारतीय सरकार के प्रमुख इस छोटी सी माँग को भी स्वीकार न कर सके। कांग्रेस नेताओ ने राउन्ड टेबिल कान्फ्रेन्स में जाने से इन्कार कर दिया, परन्तु नरम दल तथा अन्य दलो के लिए यह कदम बड़ा भारी कदम था। इन्होंने राउन्ड टेबिल कान्फरेन्स को स्वीकार कर लिया।

लाहौर कांग्रेस का रास्ता साफ हो गया। सन् १९२९ के अन्तिम दिन ता० ३१ दिसम्वर की रात के १२ बजे के बाद कांग्रेस ने औपनिवेशिक स्वराज्य को दफना कर पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया। पूर्ण स्वतंत्रता कितनी प्यारी चीज़ है, कितनी महान वस्तु है, इसकी कल्पना उसकी मॉग होते ही कांग्रेस मे जिस अह्लाद, जिस उत्साह का तूफान उठा उसे देखकर ही की जा सकती थी।

कांग्रेस ने गोलमेज परिषद् के वायकाट करने का निर्णय किया, धारा सभाओं में गये हुए अपने सदस्यो को स्तीफ़ा देने की आज्ञा दी और आगे युद्ध किस प्रकार चलाया जाय इसका भार महात्मा गान्धी को सौंपा। यद्यपि कांग्रेस के अधिकांश सदस्यों ने धारा सभाओ से स्तीफ़े दे दिये, फिर भी कुछ तो ऐसे निकले ही, जिनसे अपनी सीटें न छोड़ी गयीं। कांग्रेस की आज्ञा के विरुद्ध सेठ गोविन्ददास जी का एक क्षण के लिए भी कौंसिल आफ़ स्टेट में रहना असभव था। उनका स्टेट कौंसिल से, और उनके अनन्य मित्र प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र का असेम्वली से, कदाचित सबसे पहले दो स्तीफे थे।

सारे देश की आँखें महात्मा गान्धी की ओर घूम गयीं। किस प्रकार का युद्ध आरम्भ होता है, यह देखने के लिए देश का प्रत्येक व्यक्ति आतुर हो उठा। मध्यप्रान्त की भी वही दशा थी। इस समय हिन्दी मध्यप्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे सेठ गोविन्ददास जी। उनके दाहने हाथ प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र प्रान्तीय कमेटी के मत्री थे। गोविन्ददास जी का दैनिक पत्र 'लोकमत' इस समय सारे प्रान्त में एक नवीन जीवन फूँक रहा था। यह पत्र हिन्दुस्तान के हिन्दी दैनिक पत्रो में सवश्रेष्ठ समझा जाता था और गोविन्ददास जी ने अपना निज का करीब पचास हजार रुपया इस पत्र तथा इसके प्रेस में लगाया था। गोविन्ददास जी के अनेक छूटे हुए पुराने साथी, जिनमें प० रविशकर जी शुक्ल मुख्य थे, इस युद्ध में भाग लेने उनके साथ आ गये। अनेक नये साथी भी तैयार हुए। इसी समय प० द्वारकाप्रसाद जी ने पुराने इतिहास

मे से खोजकर हिन्दी मध्यप्रान्त को उसका पुराना नाम 'महाकोशल' दिया। सारे प्रान्त में अभूतपूर्व जागृति थी, अभूतपूर्व उत्साह था, अभूतपूर्व त्याग और बलिदान की भावना थी और सबसे अधिक उत्साह तथा त्याग का भाव था उसके नेता, उसकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति, सेठ गोविन्ददास जी के हृदय मे।

[२]

सन् १९३० की २६ जनवरी को सारे देश में पूर्ण स्वातंत्र्य दिवस मनाया गया। इसके कुछ समय बाद महात्मा गान्धी ने नमक-कर के विरुद्ध सत्याग्रह की घोषणा की और ग़ैर-कानूनी नमक बनाने के लिए ता० १२ मार्च सन् १९३० को डांडी नामक स्थान की ओर पैदल ही कूच किया। सारे देश में जोश का अद्भुत तूफ़ान उठा और डांडी के इस कूच को सारे देश का प्रत्येक व्यक्ति अपना सारा काम-काज भूलकर एक टक देखने लगा।

इस वर्ष ता० १५ अप्रैल को महाकोशल की प्रान्तीय राजनैतिक परिषद रायपुर में होने वाली थी। इसके सभापति के पद को सुशोभित करने वाले थे राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल। ता० १३ अप्रैल को जब जवाहरलालजी रायपुर के लिए रवाना हुए उस समय छिवकी स्टेशन पर ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। महाकोशल की परिषद में जवाहरलाल जी के स्थान पर गोविन्ददास जी बैठाये गये। इस परिषद में दिया गया गोविन्ददास जी का भाषण रायपुर तथा महाकोशल प्रान्त के लोग अब तक नही भूले हैं। परिषद तो निर्विघ्न समाप्त हुई, परन्तु राष्ट्रपति की गिरफ्तारी

के बाद सारे देश में ज़ोर का दमन आरम्भ हो गया। उसकी प्रतीक्षा मध्यप्रान्त में भी उत्कण्ठा से की जाने लगी।

रायपुर की परिषद समाप्त होने के बाद महाकोशल प्रान्तीय कॉंग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों ने 'युद्ध-समिति' का नाम धारण कर इस युद्ध-समिति के पहले सेनापति सेठ गोविन्ददास जी के नेतृत्व में महाकोशल की राजधानी जबलपुर में डेरा जमाया और अब यह विचार आरम्भ हुआ कि मध्यप्रान्तीय सरकार को मध्यप्रान्त मे दमन करने के लिए किस प्रकार विवश किया जाय।

महाकोशल में समुद्र नही था। यद्यपि सोरे से नमक बनाने की ग़ैर कानूनी कार्यवाई यहाँ भी की गयी, पर यहाँ नमक सत्याग्रह बड़े रूप में न चल सकता था। अतः पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने जंगल सत्याग्रह करने की युक्ति सोची।

सबको मिश्र जी का यह प्रस्ताव बडा अच्छा जान पड़ा। पंडित जवाहरलाल जी अपना चार्ज पंडित मोतीलाल जी को दे गये थे। जंगल सत्याग्रह करने की इजाज़त कांग्रेस-सभापति से लेना आवश्यक था अत. प्रान्तीय मन्त्री पं० द्वारकाप्रसाद जी इस आज्ञा को लेने प्रयाग गये। आज्ञा मिल गयी और अब महाकोशल में सत्याग्रह आन्दोलन की तैयारी आरम्भ हुई।

इस सत्याग्रह सग्राम में जो प्रान्तीय नेता लगे थे उनमें गोविन्द-दास जी के अतिरिक्त पं० रविशंकर जी शुक्ल, प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र, पं० दुर्गाशंकर जी मेहता, श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त, श्री केशवरामचन्द्र खांडेकर, ठाकुर छेदीलाल जी, पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी, मौलवी चिरागुद्दीन साहब, श्री वासुदेवराव जी सूबेदार,

श्री गोविन्दराव जी लोकरस, श्री प्रेमशंकर जी धगट, श्री रघुवर-प्रसाद जी मोदी, श्री प्रभाकर ढुंढीराज जटार, श्री गिरिजाशंकर जी अग्निहोत्री, लाला अर्जुनसिंह जी, श्रीशंभूदयाल जी मिश्र, श्री सैयद अहमद साहब, श्री शंकरलाल जी चौधरी, श्री नीतिराज सिंह जी, श्री बुद्धसिंह जी त्यागी, श्री विश्वनाथ दामोदर सालपेकर, सेठ दीपचन्द जी, श्री बिहारीलाल जी पटेल, सेठ शिवदास जी डागा, श्री वामनराव जी लाखे, ठाकुर प्यारेलाल सिंह जी, महन्त लक्ष्मी-नारायणदास जी, मौलाना रऊफ खां साहब, श्री रत्नाकर झा, श्री मोहन लाल जी बाखलीवाल, तथा श्री बद्री नाथ जी दुबे, श्री ठाकुर लक्ष्मण सिंह जी चौहान, श्री देवी प्रसाद जी शुक्ल, श्री नरसिंहदास जी अग्रवाल, श्री गोविन्द प्रसाद जी खम्पीरिया, श्रीमती मनोरमा नावलेकर, श्री लक्ष्मीशंकर जी भट्ट आदि मुख्य थे ।

महारानी दुर्गावती महाकोशल की सबसे बड़ी वीरांगना हो चुकी हैं। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उन्होने युद्ध में लड़ते लड़ते अपनी जान दी थी। जिस स्थान पर वे मरी थीं, और जहाँ उनका दाह संस्कार हुआ था, वहाँ एक चौतरा बना हुआ है। यह चौतरा जबलपुर से करीब १२ मील दूर है। प्रान्तीय कार्य-कारिणी ने स्वयं सेवकों का एक जुलूस पैदल इस चौतरे तक ले जाने का निश्चय किया और यह भी निश्चय किया कि स्वयंसेवक उस चौतरे को स्पर्शकर देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी जान भी दे देने की प्रतिज्ञा करें।

सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता में स्वयंसेवको का यह जुलूस पैदल वीरांगना महारानी दुर्गावती के चौतरे को रवाना हुआ।

यह दृश्य जबलपुर के लिए अभूतपूर्व दृश्य था। हजारो आदमी कौमी नारे लगाते हुए बलवाई स्वयसेवकों के इस जुलूस के साथ जा रहे थे। देश-भक्ति की उमंग और उत्साह चरम सीमा को पहुँच गये थे। इस बलवाई जुलूस का नेतृत्व कर रहा था जबलपुर के सर्वोत्कृष्ट राजभक्त कुटुम्ब का एक व्यक्ति जो गोविन्द-दासजी महलों में मखमली गद्दों पर पाले और बड़े किये गये थे, वे आज देश की स्वतंत्रता के लिए जेल की चहरदीवारों को नाक कर किसी प्रकार भी स्वय परतन्त्र होने के लिए उतावले हो रहे थे।

स्वतंत्रता के समर में भेजने की बिदाई के लिए जबलपुर के नागरिको ने न जाने कितना कुमकुम् उनके मस्तक पर लगाया, न जाने कितनी मालाएँ उनके गले में पहनायीं और न जाने कितनी उनकी आरतियाँ उतारीं। जबलपुर की महिलाओं ने अपनी अपनी अट्टालिकाओं से न जाने कितनी पुष्प-वर्षा अपने इस महान वीर पर की।

गोविन्ददास जी और वे हजारों आदमी पैदल ही उस वीरांगना के चौतरे पर पहुँचे। सबसे पहले चौतरे को स्पर्श कर गोविन्ददास जी ने प्रतिज्ञा की कि वे देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राण दे देंगे पर स्वातन्त्र्य सग्राम से अपना मुख न मोड़ेंगे। उनके पश्चात् प० द्वारकाप्रसाद जी तथा अन्य स्वयसेवको ने उनका

अनुसरण किया। जिस समय गोविन्ददास जी यह अटल प्रतिज्ञा कर रहे थे उस समय न जाने कितने नेत्रो से प्रेम और उत्साह के कारण चौधारे आँसू बह रहे थे।

महारानी दुर्गावती के चौतरे से लौटकर सार्वजनिक सभा हुई। ऐसी विराट सभा जबलपुर मे इसके पूर्व कभी न हुई थी। सेठ गोविन्ददास जी का इस सभा मे दिया गया भाषण आज भी जबलपुर निवासियों के कानो में गूँज उठता है। उन्होंने कहा था—

"मेरे पितामह राजा गोकुलदास जी के पितामह सेठ सेवाराम जी जयसलमेर से आपके नगर मे लोटा-डोर लेकर आये थे। आपके बीच रहते हुए उन्होंने तथा उनके वशजों ने हजारो और लाखों नहीं, करोड़ो कमाये। मैं आज यहाँ यह कह देना चाहता हूँ कि देश के उद्धार के लिए, आपके उपकार के लिए, मेरा सर्वस्व जाकर मेरे हाथ में यदि वही लोटा-डोर रह जायगी तो मैं अपने को परम सौभाग्यशाली समझूँगा।"

गोविन्ददास जी के भाषण के इस अंश ने आधे से अधिक श्रोताओ को सजल नयन कर दिया। अनेक के आँसुओ की झड़ी लग गयी। कानो को बहरे बना देने वाली करतल ध्वनि के कारण उन्हें आगे के भाषण को कुछ क्षण के लिए रोकना पड़ा। कुछ देर बाद वे फिर बोले—

"मेरा कुटुम्ब राजभक्त कुटुम्ब रहा है। मेरे परदादा सेठ खुशहालचन्द जी ने सन् १८५७ के स्वातंत्र्य संग्राम मे इस सरकार को सहायता दी थी। इस सहायता के उपलक्ष में उन्हे हीरों से

जड़ी हुई सोने की एक कमर-पेटी मिली है। उस कमर-पेटी पर खुदा है 'सेठ खुशहालचन्द को, सन् १८५७ के बलवे में, उन्होंने सरकार को जो सहायता दी, उस सहायता के उपलक्ष में, यह कमर-पेटी भेंट की जाती है।' वह बलवा नही, किंतु देश को स्वतत्र करने के लिए किया गया स्वातंत्र्य संग्राम था, अतः यह निर्विवाद है कि सेठ खुशहालचन्द जी ने इस सरकार की सहायता कर एक पाप किया था। मैं उस पाप का प्रायश्चित करना चाहता हूँ और उसी कमर-पेटी की पुश्त पर यह खुदवा देना चाहता हूँ कि जिस सरकार की स्थापना करने का सेठ खुशहालचन्द जी ने यत्न किया था उसी सरकार को उलट देने का उनके प्रपौत्र गोविन्ददास ने प्रयत्न किया।"

जयघोष और कौमी नारो के प्रचण्ड शब्द के कारण गोविन्द-दासजी को फिर रुकना पड़ा। उन्होने अपने भाषण का अन्त निम्नलिखित दोहे को पढ़कर किया—

"कबिरा खड़ा बाज़ार मे लिये लुकाटी हाथ,
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ।"

इस विराट सभा के पश्चात् शीघ्र ही जंगल सत्याग्रह होने वाला था, परन्तु मध्य-प्रान्तीय सरकार ने गोविन्ददास जी को उसे आरम्भ करने के पूर्व ही गिरफ्तार कर लिया। उनके साथ गिरफ्तार किये गये प० रविशकर जी शुक्ल, प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र, प० माखनलाल जी चतर्वेदी और बाबू विष्णुदयाल जी भाग

सारे शहर ने, हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई सभी कौमो ने, अपने नेता की गिरफ्तारी पर हड़ताल मनायी। ऐसी हड़ताल जबलपुर में इसके पहले कभी न हुई थी।

जबलपुर के सेन्ट्रल जेल में ही इन पाँचों वीरों पर मुकदमा चला। दफा १२४ अ, १२० और १२४ अ, १०९ के साथ सब पर लगाये गये। सच्चे सत्याग्रहियों की भाँति किसी ने भी मुकदमे मे कोई पैरवी न की। विष्णुदयाल जी को एक वर्ष और शेष चारो नेताओ को दो दो वर्ष के कठिन कारावास का दण्ड ता० १२ मई को दे दिया गया।

गोविन्ददास जी को उनके भाषण के जिस अंश पर राजद्रोही ठहराया गया था वह वही कमर-पेटी वाला अंश था।

गोविन्ददास जी के महान् साहस पर महाकोशल ने उन्हें 'कोशल-केसरी' की उपाधि से विभूषित किया। उनके पूर्वजों को सरकार ने बड़ी बड़ी पदवियाँ दी थीं, पर गोविन्ददास जी को जनता की ओर से यह पद मिला। महाकोशल प्रान्त का एक सिरे से दूसरा सिरा 'कोशल-केसरी' के जयघोष से गूँज उठा।

गोविन्ददास जी की साध पूरी हुई। उन्हे महाकोशल के सत्याग्रह संग्राम के प्रथम बन्दी का सौभाग्य प्राप्त हो गया, परन्तु उनके कुटुम्बी जनो, खासकर उनकी माता की बुरी दशा थी। उनका खाना, पीना, नींद सभी कुछ चला गया। उनके आँखो के आँसू बन्द न होते थे और उनके मन में हर क्षण एक ही आह उठती थी—

"वह फूल सा कोमल बालक जेल में कैसे रह सकेगा"

गोविन्ददास जी की गिरफ्तारी पर पं० मोतीलाल जी नेहरू ने अपने मित्र दीवान बहादुर जीवनदास जी को खास हिन्दी में एक चिट्ठी लिखकर भेजी थी। पडितजी हिन्दी मे बहुत कम लिखते थे और यह चिट्ठी उनके विरले पत्रो में है।

कुछ दिन बाद स्वयं पंडित जी जबलपुर आये और उन्होने अपने भाषण में गोविन्ददास जी के त्याग एव साहस की भूरि भूरि प्रशसा करते हुए कहा कि—"मैं अपने एक नहीं, दो लड़के मानता हूँ। एक जवाहरलाल और दूसरे गोविन्ददास।"

[३]

गोविन्ददास जी को जेल-जीवन जितना सरल मालूम होता था उनके लिए वह उतना सरल सिद्ध न हुआ। जो साधारण मकानो, या झोपड़ो में रहते हैं, मोटा खाते और पहनते हैं, उनकी दूसरी बात है, पर महल और जेल की बैरको में तो आकाश-पाताल का अन्तर है। यद्यपि गोविन्ददास जी ने सन् १९२० के बाद अपना जीवन बहुत सादा कर लिया था, पर अभी भी रहते तो वे 'राजा गोकुलदास महल' मे ही थे। अभी भी उन्हें हाथ से कोई काम करने की आदत न थी, यहाँ तक कि पानी तक वे हाथ से उठाकर न पीते थे।

जेल में पहुँचते ही सबसे पहला प्रश्न उनके सामने नहाने का उपस्थित हुआ। वे हाथ से नहाना न जानते थे। एक नौकर उनके शरीर को मलता और दूसरा पानी डालता था। नहाना भी उनके लिए एक समस्या है, यह शायद उन्होंने स्वय न सोचा था।

पहले दिन जब वे नहाये तो जिस लोटे से वे नहाये वह लोटा कई बार भटभट करके उनके सिर मे लगा था। इस घटना से उन्हें अपने आप पर ही बड़ी ग्लानि आयी। इस प्रकार की अपनी परतंत्रताओ की शृंखलाओं से उन्होने अपने को मुक्त करने का निश्चय कर लिया। उन्होने स्वयं अपने कपड़े धोने, बर्तन माँजने, कमरे मे झाड़ू देने और पैखाना तक साफ करने का संकल्प किया। पहले पहल उन्हे इन कार्यों को करने में बड़ा कष्ट हुआ। वे अपने कपड़ो को न तो ठीक तरह धो और न निचो सकते थे। धोती निचोते निचोते तो उनके हाथ भर आते थे। उनकी हथेलियाँ बहुत ही मुलायम हैं। स्त्रियो तक में बहुत कम की हथेलियाँ इतनी कोमल होंगी। बर्तन मॉजने के कारण उनके हाथ कल्लाने लगते और यह कल्लाहट घन्टों रहती थी। जिन्दगी मे कभी उन्होने झाड़ू दिया तो था नही, अतः जब वे झाड़ू देते तब गरदा सामने जाने के बदले उल्टी उनके नाक-मुँह में भरती और वे घन्टो खाँसते थे। पर वे दृढ़ प्रतिज्ञ थे अतः धीरे धीरे उन्होने इन सब चीजो को सीख ही लिया। अपने नित्य कर्मों में जितने वे परतंत्र थे उतने ही स्वावलबी हो गये।

जेल का अपना समय उन्होने पढ़ने-लिखने मे लगाया। संसार के धर्म, दर्शन और साहित्य का अध्ययन उन्होंने आरम्भ किया और फिर तो यह अध्ययन तीनो जेल यात्राओं मे चलता रहा। बहुत दिन का छूटा हुआ साहित्य-लेखन भी फिर आरम्भ हुआ। उन्होने जिन ग्रन्थो और लेखकों को पढ़ा उनका थोड़ा-सा ब्यौरा यहाँ इसलिए दिया जाता है, जिससे मालूम हो कि उन्होंने

इस काल का कितना सदुपयोग किया था। धार्मिक ग्रन्थों में उन्होंने वेद पंचदशी और दशो उपनिषद्, बौद्ध धम्म सुत्त, बाइबिल और कुरान पढ़े। पश्चिमी तत्त्ववेत्ताओ में उन्होने यूनान के साक्रेटीज, प्लेटो और अरिस्टाटिल तथा इंग्लैंड के हर्बर्ट स्पेन्सर, स्टुअर्ट मिल और रस्किन का अध्ययन किया। साहित्य मे उन्होंने इंग्लैंड के डिकिन्स, थैकरे, शा, गाल्सवर्दी और वैरी, आयर्लैन्ड के सिंजे, फ्रान्स के विक्टर ह्यूगो, अनातोल फ्रान्स, मोपासा, रोमारोलां और ब्रूइक्स, रूस के टाल्सटाय, डास्टोवैस्की, तुर्गनेव और शिकाव, जर्मनी के हाप्टमैन, नारवे के इवसन और जार्नसन, स्वीडेन के स्ट्रेन्डवर्ग, अमेरिका के नील के उपन्यास और नाटको का अनुशीलन किया। शेक्सपियर आदि पुराने लेखको को तो वे पहले ही पढ़ चुके थे। जेल मे उन्होने एक छोटा-सा पुस्तकालय ही बना लिया था।

गान्धी-अरविन समझौते तक करीब साढ़े दस महीने गोविन्द दास जी जेल में रहे। वे जबलपुर, बुलढाना और दमोह तीन जेलो में रखे गये। इन तीनो जेलो में उनका लिखना भी चलता रहा, जिसके फल स्वरूप जब वे जेल से निकले तब उनके साथ ही उनके 'कर्तव्य', 'प्रकाश' और 'नवरस' नामक तीन उत्तम नाटक भी निकल सके।

गोविन्ददास जी 'ए' क्लास मे रखे गये थे। उन्हें जेल में कोई कष्ट नहीं दिया गया; यहाँ तक कि कड़ी सजा होने पर भी उनसे कोई काम नहीं लिया गया, फिर भी जेल में उनका

स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा और जब वे निकले तब उनका वज़न भी काफ़ी घट गया था।

[४]

जो यह कहते हैं कि असहयोग आन्दोलन असफल हो गया, उन्हे सत्याग्रह संग्राम के इतिहास को गौर से पढ़ना चाहिए। सत्याग्रह संग्राम यथार्थ मे वही से आगे बढ़ा जहाॅ असहयोग आन्दोलन समाप्त हुआ था। इस सत्याग्रह में जो जो हुआ वह इस देश में कभी होगा, इसकी कुछ वर्षों पहले कोई कल्पना भी न कर सकता था। एक लाख आदमी जेल गये, हज़ारो ने लाठियाँ खायी, कई गोली के निशाने हुए, और कई फॉसी के तख्तो पर झूले। अहिंसा हिंसा से कैसे लोहा ले सकती है, इसे संसार ने देखा। ता० २५ जनवरी सन् १९३१ को महात्मा गान्धी और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य छोड़ दिये गये, और जिस राज्य में सूर्य नहीं डूबता, जिसका सामना करने में संसार का बलवान से भी बलवान राष्ट्र भी सहमता है, उसके भारतीय अधिपति ने मुट्ठी भर हड्डियो वाले बूढे गान्धी के सामने बैठ ता० ४ मार्च को बराबरी के नाते से पैक्ट किया।

गान्धी-अरविन पैक्ट के बाद सारे राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये। गोविन्ददास जी भी छूटे और जबलपुर ने उनका अभूत पूर्व स्वागत किया। वे दमोह जेल से छूटे थे। दमोह जबलपुर से ६० मील है। उस दिन दमोह से जबलपुर तक मोटरो की ऐसी घुड़दौड़ हुई जैसी इसके पहले कभी न हुई थी। जबलपुर नगर

की सीमा पर ही हज़ारो की संख्या मे जबलपुर के नागरिक गोविन्ददास जी के स्वागत के लिए पहुँच गये थे। दमोह से जबलपुर आते हुए, रास्ते के हर कसबे और हर गॉव मे यह स्वागत हुआ था। सारा नगर सजाया गया था और एक भी नागरिक उस दिन कदाचित अपने घर में न रहा होगा। सभी स्वागत मे सम्मिलित थे। गोविन्ददास जी को इतनी मालाएँ पहनायी गयीं कि जबलपुर और उसके आसपास के बगीचो में कदाचित पुष्प न बचा होगा। सभी फूल उन गजरो मे काम आये थे।

'राजा गोकुलदास महल' का फाटक किसी विवाह की अपेक्षा भी कही अधिक ठाट-बाट से सजा था। जब जुलूस महल पर पहुँचा, और गोविन्ददास जी को मोटर से उतार उनके पिता फाटक तक ले गये, तथा उनकी माता ने फाटक पर उनकी आरती उतारी। उस समय सारे जन-समुदाय का हृदय भर आया। जबलपुर में हफ्तों स्वागत के जलसे चलते रहे। जबलपुर म्युनिसिपैलटी से लेकर जबलपुर की छोटी से छोटी संस्था तक ने गोविन्ददास जी और उनके साथियो को मानपत्र दिये।

[५]

अप्रेल महीने में करॉची मे धूमधाम से कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और ता० २९ अगस्त को कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से गान्धी जी दूसरी गोलमेज़ परिषद मे सम्मिलित होने के लिए विलायत चले गये। परन्तु भारत में शान्ति न रह सकी। छोटे छोटे सरकारी अफसर इस समझौते की शर्तों के अनुसार न

चलना चाहते थे । कृषकों की परिस्थिति बड़ी खराब थी। उनकी जॉच के लिए संयुक्तप्रान्त मे एक कृषक जॉच समिति नियुक्त हुई थी। सीमाप्रान्त और सयुक्तप्रान्त में गान्धी जी के विलायत से लौटने के पहले ही दमन शुरू हो गया। खान अब्दुल गफ्फार खां ता० २५ दिसम्बर और पंडित जवाहरलाल ता० २६ दिसम्बर को गिरफ्तार हो गये।

गान्धी जी विलायत से ता० २८ दिसम्बर को लौटे और जब बम्बई मे जहाज से उतरते ही उन्होने यह परिस्थिति देखी, तब उन्हे मालूम हो गया कि अब शान्ति रहना सम्भव नही है। गान्धी जी बम्बई मे ही ता० ४ जनवरी सन् १९३२ को गिरफ्तार कर लिये गये और थोडे समय की शान्ति के बाद ही फिर से युद्ध आरम्भ हो गया।

सयुक्तप्रान्त के समान मध्यप्रान्त में भी किसानों की शोचनीय परिस्थिति थी और यहाँ भी सेठ गोविन्ददास जी की अध्यक्षता में एक कृषक जाँच समिति बनायी गयी थी। इसकी रिपोर्ट शीघ्र ही निकलने वाली थी।

गान्धी जी की गिरफ्तारी पर उन्हें बधाई देने के लिए ता० ५ जनवरी को जबलपुर मे एक सार्वजनिक सभा बुलायी गयी। इस सभा में कोई गड़बड़ होगी इसकी किसी ने कल्पना तक न की थी। सभा में पहुँचने के पहले ही गोविन्ददास जी को खबर मिली कि सभास्थल पर हथियार बन्द पुलिस पहुँच गयी है।

सार्वजनिक सभा करना एक मामूली बात थी, पर मालूम हो गया कि हवा का रुख किस ओर है। कृषक जाँच समिति की

रिपोर्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही मध्यप्रान्त की सरकार स्वयं झगड़ा मोल लेना तथा आन्दोलन को आगे बढ़ने से रोक देना चाहती है।

गोविन्ददास जी और मिश्र जी तत्काल सभा स्थल पर पहुँचे। पता लग गया कि भाषण आरम्भ होते ही नेताओं को गिरफ्तार करके सभा को लाठी चार्ज से भंग कर दिया जावेगा।

सत्याग्रह की अब तक कोई तैयारी भी न होने पायी थी, न रुपया इकट्ठा हुआ था और न स्वयसेवक ही भर्ती किये गये थे। मिश्र जी को एक विचित्र बात सूझी। उन्होने गोविन्ददास जी को सलाह दी कि बिना भाषण के मूक सभा को ही चलाया जाय तथा आगे क्या होता है, इसे देखा जाय। गोविन्ददास जी को भी यह सलाह बड़ी अच्छी मालूम हुई। उन्होने खड़े होकर कहा—

"आज की हमारी सार्वजनिक सभा में इस हथियार-बन्द पुलिस के आगमन से एक विचित्र परिस्थिति पैदा हो गयी है। इस विचित्र परिस्थिति में मैं भी इस सभा को एक विचित्र प्रकार से ही चलाऊँगा। आज सभा में भाषण न होंगे पर एक व्यक्ति भी सभास्थल को छोड़कर न जाय। मैं भी यही रहूँगा और सब लोग भी यहीं रहें। जब तक मैं कहूँ यह मूक सभा चले।"

सभा में गोविन्ददास जी की इस विचित्र आज्ञा से एक विचित्र प्रकार की चहल-पहल मच गयी। पुलिस को हुक्म था कि भाषणो के बाद गिरफ्तारी हो और गिरफ्तारी के बाद लाठी चार्ज, पर यदि भाषण ही न हों तो क्या किया जाय, इसकी उसे कोई आज्ञा न थी। सभा में हजारों आदमी थे। सारी रात वे

उसी प्रकार बैठे रहे और पुलिस भी किंकर्तव्य विमूढ़-सी खड़ी रही। मौसम सर्दी का था इसलिए तापने के लिए लकड़ियाँ जलवा दी गयीं।

रात भर की दूसरी बात थी, पर अब आगे बिना कोई कार्यक्रम के जनसमुदाय को रोक कर न रखा जा सकता था, अतः विचार कर यह निश्चय किया गया कि प्रातःकाल से राष्ट्रीय झंडे का पूजन आरंभ हो। इस कार्यक्रम की सूचना हवा के सदृश चारों ओर फैल गयी। इस सूचना का इतना महत्त्व इसलिए था कि गोविन्ददास जी ने घर न लौटकर दिन और रात उसी झंडे के नीचे बैठने का निश्चय किया था।

चार दिन और चार रात गोविन्ददास जी ने उस स्थल को न छोड़ा। चार दिनों और चार रातों में उस स्थल पर जो धूम रही, वह कदाचित फिर कभी जबलपुर निवासियो को देखने को न मिलेगी। जबलपुर नगर के सिवा चारो तरफ के गावो मे भी यह संवाद फैल गया और इन चार दिनो और चार रातो मे जबलपुर नगर तथा देहात के एक लाख मनुष्यो से भी अधिक मनुष्यो ने झडा-पूजन के इस कार्यक्रम में भाग लिया। पूजन के साथ झंडे की भेट भी होती थी और वहीं सत्याग्रह मे भाग लेने वाले स्वयंसेवकों के नाम भी लिखे जाते थे। इस भेट से करीब दस हज़ार रुपया एकत्रित हुआ और सैकड़ों की तादाद में स्वयंसेवक भी मिल गये।

इन चार दिनो मे जब तक यह मूक सभा चलती रही, शहर अनेक तरह की अफवाहों से भरा रहा। कभी अफवाह उड़ती थी कि सभास्थल पर गोली चलने वाली है, कभी अफवाह उड़ती थी

कि फौजी तोपो से वह स्थल ही उड़ा दिया जावेगा। इन कामों में देर होने का कारण यह बताया जाता था कि नागपुर की सरकार ने भारतीय सरकार को लिखा है और भारतीय सरकार विलायती सरकार से परामर्श कर रही है। गोविन्ददास जी को इन बातो की चिन्ता न थी, क्योंकि वे तो सब परिस्थितियो के लिए तैयार थे, परन्तु उनके घर के लोगों का एक एक क्षण कठिनाई से कट रहा था। उनकी माता तो पानी में से निकाली हुई मछली के सदृश तड़प रही थीं। "हे भगवान! मेरे इकलौते बेटे को मेरे सामने ही गोली और तोप के निशाने से तो बचाइये।" यही उनके दिन और रात का जाप था। वे चाहती थीं कि गोविन्ददास जी किसी भी तरह गिरफ्तार होकर जेल चले जाँय।

पाँचवें दिन ता० १० जनवरी को जब यह जोश कुछ ठंडा पड़ता दिखा तब गोविन्ददास जी ने भाषण देने का निश्चय किया। डुग्गी पीटी गयी कि आज ५ बजे सन्ध्या को गोविन्ददास जी का भाषण होगा। भाषण में गोविन्ददास जी ने कहा—

"मैं जानता हूँ कि मैं अधिक न बोल पाऊँगा और गिरफ़्तार हो जाऊँगा। हमारा पहला सत्याग्रह संग्राम ज्यादातर नगरो में ही कैद रहा। इस बार का युद्ध गावो में भी हो। कृषकों की दशा कैसी है यह मैंने जबलपुर, सागर और दमोह के देहातों में कृषक जाँच समिति के साथ जाकर देखी है। वे लगान नही दे सकते, और न दें। मेरे किसान भी मेरे पिताजी को लगान न दें। मेरे जेल जाने बाद यदि पिता जी ने उनसे लगान ज़बर्दस्ती वसूल किया

और सरकार को जमा दे दी तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जेल से लौटकर 'राजा गोकुलदास महल' मे न रहूँगा।"

विचित्र प्रतिज्ञा थी। प्रतिज्ञा का परिणाम भयंकर, महा-भयंकर हो सकता था, और हुआ भी। जो कुछ हो, पर प्रतिज्ञा तो हो ही चुकी थी। भाषण पूरा पूरा होते ही गोविन्ददास जी, द्वारकाप्रसाद जी मिश्र, लक्ष्मण सिंह जी चौहान तथा उनके साथ हीरालाल बाबा नामक स्वयंसेवक, चार व्यक्ति, गिरफ्तार कर लिये गये और शेष सभा पर भयंकर लाठी चार्ज हुआ। गोविन्ददास जी की गिरफ्तारी से इस बार सबसे अधिक हर्ष उनकी माता को हुआ। उनकी माता, जो उनकी पहली बार की गिरफ्तारी पर आठ आठ आँसू रोई थी, वे इस बार परम प्रफुल्लित थी। बड़ी आपत्ति के सामने छोटी आपत्ति दुःख का नहीं सुख का कारण होती है।

इस बार गोविन्ददास जी और मिश्र जी को एक एक वर्ष, लक्ष्मणसिंह जी चौहान को छै महीने और हीरालाल बाबा को चार महीने के कठिन कारावास का दण्ड मिला।

इस बार सरकार ने सब पर जुर्माने भी किये थे। गोविन्ददास जी पर दो हज़ार, मिश्र जी पर पन्द्रह सौ और चौहान जी पर अढ़ाई सौ रुपया जुर्माना हुआ था।

[६]

दूसरी जेल यात्रा में गोविन्ददास जी नागपुर जेल में रखे गये और इस बार भी उनके पढ़ने लिखने का वही कार्य-क्रम रहा, परन्तु इस बार यह कार्यक्रम पाँच महीने से अधिक न चल सका।

इसका कारण था। गोविन्ददास जी की पत्नी सख्त बीमार हुई। उनकी बीमारी के सवादों ने गोविन्ददास जी के चित्त को बहुत उद्विग्न कर दिया और सारा लिखना-पढ़ना बन्द हो गया।

उनकी पत्नी के इस बीमारी से बचने की कोई आशा न थी। पति-पत्नी का परस्पर अत्यधिक प्रेम था और ऐसी परिस्थिति में दोनों की एक दूसरे से मिलने की अत्यधिक उत्कण्ठा थी। सरकार भी कुछ शर्तों पर गोविन्ददास जी को छोड़ने को तैयार हो गयी।

एक ओर मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई पत्नी का प्रेम था और दूसरी ओर सिद्धान्तों की हत्या। इस मानसिक संघर्ष मे गोविन्ददास जी तिलमिला उठे। नींद और भूख दोनो ने ही उनसे विदा ले ली। हृदय में ज्वालाएँ उठती थीं और उनसे तप्त हो होकर आँखो से गरम जल बहता था। कई दिनो के इस मानसिक संघर्ष के बाद गोविन्ददास जी ने शर्तों पर न छूटना ही तय किया और अपने निर्णय की सूचना सरकार को भेज दी। सरकार गोविन्ददास जी के दृढ़ संकल्प से भली भाँति परिचित हो चुकी थी, अतः उसने अब उन्हें बिना शर्त के ही रिहा कर दिया। उन्हें एक वर्ष की सज़ा थी, पर वे करीब छै महीने में ही छोड़ दिये गये। इस बार की जेलयात्रा में वे 'हर्ष', 'कुलीनता', 'विश्वासघात' और 'स्पर्धा' चार नाटक लिखकर लाये थे।

[७]

गोविन्ददास जी ने जेल में सुन लिया था कि उनके पिता जी ने बड़ी सख्ती से किसानों से लगान वसूल किया है और सरकारी

जमा भी पटा दी है। गिरफ्तारी के पहले की गयी अपनी प्रतिज्ञा भी उन्हें याद थी। उनकी जगह यदि कोई कम जीवट का आदमी होता तो इस प्रतिज्ञा की कोई न कोई सुविधाजनक परिभाषा कर डालता, पर उनके लिए यह असभव बात थी। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का अक्षरशः पालन करने का निश्चय किया और पत्नी के मृत्यु-शय्या पर पड़े रहने पर भी वे 'राजा गोकुलदास महल' में रहने को नहीं गये। वे अपने कौटुम्बिक मन्दिर मे ठहरे। हाँ, वहाँ से पत्नी को देखने के लिए अवश्य महल में जाते-आते थे। गोविन्ददास जी का यह मन्दिर-निवास का संवाद केवल जबलपुर नगर में ही नही, पर सारे देश में बिजली के सदृश फैल गया और इसपर भिन्न भिन्न प्रकार की चर्चा होने लगी।

दीवान बहादुर जीवनदास जी और गोविन्दास जी का सन् १९२० से ही परस्पर मतभेद चला आता था। अनेक बार इस मतभेद के कारण घर मे झगड़े भी हुए थे, परन्तु बहू की ऐसी बीमारी में भी गोविन्ददास जी का घर में आकर न रहना उनके पिता जी को असह्य प्रतीत हुआ। अपने मन के क्रोध को रोकना उनके लिए असभव हो गया, और उन्होने सपत्ति के बटवारे के लिए गोविन्ददास जी को एक बड़ा कड़ा पत्र लिखा।

पिता जी से इस प्रकार का पत्र पाने का गोविन्ददास जी को कल्पना तक न थी। पत्नी की भयानक बीमारी के समय पिता जी के बटवारे के प्रस्ताव ने उन्हें और भी उद्विग्न कर दिया। बार बार के गृह-कलह से वे अनेक बार ऊब उठते थे। 'परन्तु पिता-

पुत्र के बटवारे की तो वे कल्पना तक न कर सकते थे। उन्होने पूरे दस दिन और दस रात तक सारे विषय पर हर पहलू से विचार किया और अन्त में सारी सपत्ति को त्याग देने का निश्चय किया। यह निश्चय महान् निश्चय था—ऐसा निश्चय था जैसा इस काल मे तो शायद ही किसी ने किया हो, और इस काल ही में क्या, ससार के इतिहास में ही कितने ऐसे उदाहरण मिलते हैं। साहस और त्याग दोनो की पराकाष्ठा थी।

गोविन्ददास जी ने अपने त्यागपत्र का कानूनी मसविदा बनवाया। उसे स्टाम्प्स पर लिखा और ता० ४ अगस्त सन् १९३२ को उसकी रजिस्ट्री कर पिता जी के उस पत्र के उत्तर मे उस त्यागपत्र को ही उनके पास भेज दिया।

जीवनदास जी अपने पत्र के इस प्रकार का उत्तर पाने की बात भी न सोच सकते थे। वे अवाक् रह गये और तत्काल गोविन्ददास जी की माता के पास पहुँचे। इस सब वृत्तान्त को सुनकर गोविन्ददास जी की माता की जो दशा हुई, उसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

गोविन्ददास जी पर न जाने कितने जोर उस त्यागपत्र को वापस लौटाने के लिए डाले गये, पर यह सारा यत्न निष्फल हुआ। अपने किसी निश्चय को बदलने की बात गोविन्ददास जी निश्चय करने बाद सोच ही न सकते थे।

गोविन्ददास जी का यह त्याग उनके जीवन का सबसे महान् त्याग है। इस त्यागपत्र में जो कुछ लिखा गया है, उससे उनके अन्तःकरण के गहरे से गहरे भावों का पता लगता है। पिता

जी के जिस पत्र पर उन्होंने यह त्यागपत्र दिया वह भी इसम उद्धृत है। अतः वह पूरा त्यागपत्र परिशिष्ट २ में दिया गया है।

गोविन्ददास जी ने सन् १९३० के भाषण में कहा था कि उनके पितामह के पितामह सेठ सेवाराम जी जबलपुर मे लोटा-डोर लेकर आये थे और यदि देश के उद्धार के लिए, जनता के उपकार के लिए, उनका सर्वस्व जाकर उनके हाथ में फिर लोटा-डोर ही रह जावे तो वे अपने को परम सौभाग्यशाली समझेंगे। उनकी कही हुई बात होकर ही रही।

गोविन्ददास जी के छूटने के बाद धीरे धीरे उनकी पत्नी स्वस्थ हो चली। उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए गोविन्ददास जी उन्हे राजपूताने ले गये। जब वे प्रायः स्वस्थ हो गयीं तब कुछ समय के लिए उन्हे राजपूताने मे ही छोड़ गोविन्ददास जी जबलपुर लौट आये।

सत्याग्रह संग्राम अभी भी चल रहा था। सत्याग्रह के चलते हुए गोविन्ददास जी जेल के बाहर अपने को न रख सकते थे।

सन् १९३३ के २६ जनवरी के स्वतंत्रता दिवस का उन्होने फिर नेतृत्व किया। उन्हें उसी समय गिरफ्तार कर लिया गया, और तीसरी बार उन्हें एक वर्ष के कठिन कारावास का दण्ड मिला तथा फिर दो हज़ार रुपया जुर्माना किया गया। इस बार उनके साथ देवीप्रसाद जी शुक्ल गये थे।

जेल-जीवन मे साहित्य-सेवा का तो उन्होने व्रत ही ले लिया था। वे नागपुर जेल में ही रखे गये और पहले के समान ही उनका लिखना-पढ़ना शुरू हुआ। इस बार गोविन्ददास जी को

अपनी पूरी सज़ा काटनी पड़ी। इस एक वर्ष में उन्होंने छै नाटक लिखे—'विकास', 'दलित कुसुम', 'बड़ा पापी कौन?', 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य' और 'ईर्षा'।

जब गोविन्ददास जी सन् १९३४ के जनवरी मास में छूटे उस समय सत्याग्रह संग्राम के बन्द करने की चर्चा चल रही थी। जिस प्रकार वे महाकोशल के प्रथम राजबन्दी थे उसी प्रकार रिहाई में भी उनका नम्बर अन्तिम था।

सातवाँ अध्याय

सन् १९३४ से ३८ तक के ५ वर्ष

इस बार जेल से निकलने के बाद जिस प्रश्न का सेठ गोविन्ददास जी को सबसे पहले सामना करना पड़ा वह था उनकी जीविका का प्रश्न। उन्हे भी कभी अपनी जीविका के विषय में सोचना होगा, इस बात की शायद उन्होने भी कल्पना न की थी। जिस सपत्ति से उन्होने त्याग पत्र दे दिया था उससे निर्वाह के लिए कुछ भी लेना उनके लिए असभव बात थी, यद्यपि उनके पिता जी ने बार-बार उनसे इस बात के लिए आग्रह किया था। माता जी से भी वे कुछ न लेना चाहते थे, क्योंकि कानून की दृष्टि से चाहे न हो, पर नैतिक दृष्टि से माता जी के पास की सपत्ति को भी वे उसी घर की सपत्ति समझते थे। पत्नी से कुछ लेने की वे बात ही न सोच सकते थे। मित्रो ने भी उन्हे सहायता देने के प्रस्ताव किये, पर बिना बदले मे कुछ किये, मित्रो से भी कुछ लेना उन्हें स्वीकार न था। जिस समय गोविन्ददास जी ने अपने घर की सपत्ति का त्याग किया था, उस समय उन्होने अपनी सोने की घड़ी, कमीज़ के सोने के बटन और पूजन के चाँदी के बर्तनो को भी अपने घर के लोगो को लौटा दिया था और बिना एक पाई

लिये वे घर से निकले थे। अब तक का काम उन्होंने मित्रों से कर्ज़ लेकर चलाया था, जो सदा होते रहना सभव न था।

किसी समय जब गोविन्ददास जी के पास यथेष्ट धन था तब उन्होंने एक कविता लिखी थी—

कितना द्रव्य दिया भगवान !

तुमने तो देने में रक्खा नहीं मितव्ययता का ध्यान।

नित्य प्रात में कोसों तक तुम फैला देते काञ्चन पत्र।

शुक्ल शर्वरी मध्य सतत ही फैलाते चाँदी सर्वत्र।

निशा में नित अगणित हीरक,

चमकते द्यौ में दमक दमक।

बादलों में पन्ने, मानक,

दमकते नभ में चमक चमक।

तृष्णा का तब भी अवसान

मानव मन से हुआ न तो तुम कर सकते क्या कृपानिधान ?

सोने चाँदी व निर्जीव,

टुकड़े औ' कंकर पत्थर के संग्रह में जग व्यग्र अतीव।

निर्धन और महा धनवान,

गुणी और सम्राट महान,

इसी कार्य में लगे हुए हैं, धर्म कर्म इसको ही मान।

लूट मार जो करते उसको नीति गुरु कहते, हा ज्ञान।

जिस सोने और चाँदी को गोविन्ददास जी निर्जीव टुकड़ों का विशेषण लगा घृणा की दृष्टि से देखते थे, उसी की आज उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता जान पड़ी।

वे कोई ऐसा रोजगार करना चाहते थे जिससे देश का भी उपकार हो और उनकी जीविका भी चले। उन्होने अनेक उच्च कोटि के नाटक लिखे थे। अच्छे नाटको और फिल्मो द्वारा सामाजिक कुरीतियो के निवारण का बहुत बडा कार्य हो सकता है, यह बात तो निर्विवाद है। गोविन्ददास जी का विश्वास था कि यदि उनके नाटको के फिल्म बनाये जावें तो समाज का भी उपकार होगा और सिनेमा-व्यापार में काफी मुनाफे की सभावना के कारण जीविका भी चल जायगी। वे बंबई गये और उन्होंने 'आदर्श चित्र' नामक फिल्म बनाने की कंपनी स्थापित की। फिल्म व्यवसाय समाज मे एक गिरा हुआ व्यवसाय माना जाता है, यह गोविन्ददास जी जानते थे, परन्तु जहाँ तक उनका संबन्ध था वहाँ तक तो इस व्यवसाय की पतितावस्था उन्हें इसमें सम्मिलित करने के लिए प्रोत्साहन देने वाली कारण थी, न कि रोकने वाली। उनका मत था कि कोई अच्छी चीज यदि पतित हो गयी है, तो उससे दूर न भागना चाहिए, वरन् उसे फिर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। भारत की गान-विद्या पतितों के हाथ में पड़ने से पतित समझी जाती थी, पर अब उसके पुनरुत्थान का प्रयत्न हो रहा था। यही प्रयत्न अब नाटक और सिनेमा के सबन्ध मे करने का गोविन्ददास जी ने संकल्प किया। उन्होंने निश्चय किया कि आदर्श चित्र कपनी आदर्श चित्र बनायेगी और इस आदर्श चित्र में जो काम करेंगे वे पढ़े-लिखे गृहस्थ होंगे, लुच्चे-लफंगे, भड़ुए और वेश्याएँ नही।

'आदर्श चित्र' का पहला चित्र गोविन्ददास जी के ऐतिहासिक

नाटक 'कुलीनता' की कथा पर बनना आरंभ हुआ। इसका नाम 'धुंआँधार' रखा गया।

चित्र अच्छा बना, परतु आदर्श नहीं। इसका कारण था। फिल्म में बहुत रुपया लगता है और 'धुआँधार' में ना-तजुर्बेकारी के सबब से बहुत अधिक रुपया लग गया। इतने खर्च से जो चीज़ बनाई जाती है वह व्यापारिक दृष्टि से कही असफल न हो जाय, इसकी बड़ी भारी चिन्ता रहती है। सफल फिल्म तभी हो सकता है जब जनता उसे पसन्द करे और भारतवर्ष मे फिल्म देखने वाली जनता की रुचि कुछ बहुत परिष्कृत नहीं है, यह सभी जानते हैं; अत. फिल्म मे नाच, गाने आदि कई ऐसी चीजें सम्मिलित करना पड़ती हैं, जिससे फिल्म सच्चा आदर्श नहीं रह सकता। धुआँधार में भी यही हुआ। यद्यपि धुंआँधार के मुख्य पात्रों का काम सुशिक्षित गृहस्थो ने ही किया, पर उसके नाच इत्यादि में सभी तरह के व्यक्तियों से काम लेना पड़ा। धुआँधार सफल भी न हुआ। इसका कारण भी अनुभव हीनता ही थी।

'आदर्श चित्र' का दूसरा चित्र गोविन्ददास जी के सामाजिक नाटक 'दलित कुसुम' की कथा पर बनाया गया। यह चित्र बहुत ही अच्छा बना। यद्यपि इसमें सिनेमा लाइन के व्यक्तियो ने ही काम किया है, किसी सुशिक्षित या गृहस्थ समुदाय ने नहीं, तथापि कथा, विषय, एक्टिंग और प्रभाव सभी दृष्टियो में यह चित्र एक उत्तम चित्र है। यदि 'प्रभात', 'न्यूथियेटर्स' आदि किसी नामी कपनी ने इसे बनाया होता तो आर्थिक दृष्टि से भी यह सफल होता।

'आदर्श चित्र लिमिटेड' को दोनों चित्रो मे काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ी। अब इस कंपनी का पुनः संगठन हो रहा है। गोविन्ददास जी के जीवन में यह पहला कार्य था, जो न तो उनके निश्चय के अनुसार आदर्श ढग से चला और न अब तक सफल ही हुआ।

गोविन्ददास जी ने जो दूसरी कपनी स्थापित की वह 'जबलपुर केमिकल कंपनी' है। इस कंपनी की ताँबे और वाक्साइड की खानें हैं। 'कापर सलफ़ेट' और 'एल्यूमिनियम सल्फेट' नामक दो केमिकल चीजें इसमे बननेवाली हैं। कापर सल्फ़ेट हिन्दुस्थान में बाहर से आता है और जबलपुर केमिकल कंपनी इस आयात को रोक कर देश की एक बड़ी सेवा करेगी।

जिस तीसरी कंपनी को गोविन्ददास जी ने स्थापित किया वह 'हिन्दुस्थान स्वदेशी स्टोर्स' के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ अब सामान तो बहुतेरे बनने लगे हैं, पर इनके खपाने का कोई अच्छा साधन नही है। मध्य प्रान्त मे तो इसका पूरा अभाव है, यहाँ तक कि नागपुर सदृश नगर तक में एक भी ऐसा स्वदेशी स्टोर्स नही हैं, जहाँ हर प्रकार की स्वदेशी वस्तु मिलती हो। 'हिन्दुस्थान स्वदेशी स्टोर्स' थोड़े ही दिन के भीतर अपनी दो सफल दूकानें नागपुर मे चला रहा है।

गोविन्ददास जी इन तीनो कंपनियों के मैनेजिंग एजेन्ट हैं। उन्होंने ऐसे व्यापारों को ही आरंभ किया है, जिससे उनकी जीविका चलने के साथ देश और समाज की भी भलाई हो सके। उनके उद्देश्य की पूर्ति इन कंपनियों की सफलता पर निर्भर है।

[२]

जिस प्रकार असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् कौंसिल-प्रवेश का प्रश्न उठा था, उसी प्रकार सत्याग्रह-सग्राम के खतम होने पर असेंबली-प्रवेश का सवाल उठा।

सन् १९३४ में असेम्बली का चुनाव था। पटना मे मई मास म अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का जो अधिवेशन हुआ उसमे असेम्बली-प्रवेश का निश्चय किया गया और इस कार्य को चलाने के लिए २५ सदस्यों का अखिल भारतीय पार्लिमेन्टरी बोर्ड बना। सेठ गोविन्ददास जी भी इस बोर्ड के एक सदस्य नियुक्त हुए। महाकोशल से केन्द्रीय असेम्बली में दो सदस्य जाते हैं और नागपुर के चार जिलो से एक। अखिल भारतीय पार्लिमेन्टरी बोर्ड ने महाकोशल की दोनो सीटो के लिए सेठ गोविन्ददास जी और प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र को खड़ा किया तथा नागपुर के चार जिलों की सीट से बैरिस्टर अभ्यंकर को। इस बार ये तीनो ही व्यक्ति असेम्बली में नही जाना चाहते थे। गोविन्ददास जी ने अपनी जीविका-उपार्जन का प्रश्न, और उसके लिए उन्हे जो समय देना पड़ेगा उस कठिनाई को, पार्लिमेन्टरी बोर्ड के सामने रखा। उन्होने कहा कि युद्धों के समय यदि जेल जाते रहना है, और शान्ति के समय असेम्वली, तो फिर कमाई कब की जाय। पर किसी ने उनकी एक न सुनी और उन्हें खड़ा होना ही पडा। अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी देश-हित की दृष्टि से इन तीनो ने खडे होने की जो अनुमति दे दी उसके लिए सर्दार वल्लभ भाई पटैल ने तीनो को धन्यवाद देते हुए एक वक्तव्य प्रकाशित किया।

गोविन्ददास जी, मिश्र जी और बैरिस्टर अभ्यकर तीनों ही, एक वर्ष से अधिक कारावास का दण्ड पाने के कारण, नियमानुसार बिना भारतीय सरकार की इजाज़त के, चुनाव में खड़े न हो सकते थे। अन्य अनेक स्थानो पर भी अनेक उम्मीदवारो के सम्बन्ध मे यह कठिनाई थी। ऐसे सभी उम्मीदवारो की इस प्रकार की कैद हटाने के लिए भारत सरकार को दरख्वास्त दी गयी। सारे हिन्दुस्तान में पं० द्वारका प्रसाद मिश्र को छोड़ कर बाकी सभी उम्मीदवारो की यह कैद हटा दी गयी। न जाने मिश्र जी इतने भयानक व्यक्ति क्यो समझे गये। मिश्र जी के स्थान पर महाकोशल से घनश्याम सिंह जी गुप्त खड़े किये गये। गोविन्ददास जी के विरोध में खड़े होने का साहस तो किसी को न हुआ, पर गुप्त जी के विरोध में सर हरिसिंह गौर खड़े हो ही गये।

कांग्रेस के पीछे नवीन तपस्या थी, अतः कांग्रेस की इस चुनाव मे फिर से भारी जीत हुई और अन्य सज्जनो के साथ गोविन्द-दास जी भी केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा मे पहुँच गये।

गोविन्ददास जी को अब इस कार्य का यथेष्ट अनुभव हो चुका था, अतः उन्होने सफलता-पूर्वक फिर से असेम्बली मे कार्य आरंभ कर दिया और अभी भी कर रहे हैं। असेम्बली की कांग्रेस पार्टी के वे खजांची और असेम्बली के फ्रन्ट बेन्चर हैं।

[३]

केन्द्रीय असेम्बली के बाद सन् १९३५ के नये गवर्मेन्ट आफ इन्डिया एक्ट के अनुसार सन् १९३६ के आरंभ मे प्रान्तीय

असेम्वलियो का चुनाव हुआ। कांग्रेस धारा सभाओ मे जाकर मत्री-पद ग्रहण करे या न करे, इस विपय पर चुनाव के वहुत पहिले ही देश मे चर्चा आरभ हो गयी थी। कांग्रेस मे दो दल थे—एक का मत मत्री-पद ग्रहण करने के पक्ष में था और दूसरे का विरुद्ध। गोविन्ददास जी मंत्री-पद ग्रहण करने के विरोधी पक्ष में सम्मिलित थे। उनका और प० द्वारकाप्रसाद जी मिश्र तक का इस विपय मे घोर मतभेद था।

सन् १९३५ की कांग्रेस लखनऊ में थी। जवाहरलाल जी उसके सभापति थे। कांग्रेस के इस अधिवेशन में मंत्री-पद ग्रहण करने के प्रश्न पर बड़ी गरम वहस हुई। यद्यपि जवाहरलाल जी मंत्री-पद ग्रहण करने के विरुद्ध थे तथापि उस समय की कांग्रेस-कार्य-कारिणी इस विपय पर चुनाव के पहले कोई निर्णय न कराना चाहती थी।

कार्य-कारिणी की विजय हुई और कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि चुनाव के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस बात का फैसला करे।

चुनाव में सात प्रान्तो में कांग्रेस का वहुमत हो गया, उसमें मध्यप्रान्त भी एक था। मध्यप्रान्त की इस जीत का श्रेय गोविन्द-दास जी को कुछ कम नही है। यद्यपि सर्दार वल्लभ भाई पटैल से कुछ मतभेद हो जाने के कारण गोविन्ददास जी और द्वारका प्रसाद जी इस चुनाव से हाथ खींच लेना चाहते थे, परन्तु जवाहर लाल जी ने स्वयं जवलपुर आकर दोनो को आज्ञा दी कि वे उसी प्रकार काम करें जैसा अव तक करते आये हैं। गोविन्ददास जी

ने दिन और रात परिश्रम करके एक एक दिन मे पन्द्रह पन्द्रह और बीस बीस सभाओ में भाषण देकर इस चुनाव मे अपने प्रान्त भर में तूफानी दौरा, और काम किया। जिसका फल यह हुआ कि महाकोशल की सीटों मे से कांग्रेस ने गिनती की ही सीटें खोयीं। महाकोशल की जनता इस बात को जानती है कि यदि उन्होने काम नही किया होता तो इसमें से कौन कौन सीट कांग्रेस के हाथ में न आती। यदि गोविन्ददास जी मंत्री-पद ग्रहण करने के विरुद्ध न होते तो वे ही मध्यप्रांत के प्रधान मंत्री होते। सारे महाकोशल की, जिसका प्रान्तीय असेम्बली के कांग्रेस दल में दो तिहाई बहुमत है, यही इच्छा थी, परन्तु गोविन्ददास जी अपने सिद्धान्तो पर अड़े रहना जानते थे। यद्यपि उन्होने कांग्रेस के बहुमत के निर्णय का चुनाव में अविरत परिश्रम कर समर्थन किया, पर वे स्वयं मध्यप्रान्तीय असेम्बली मे नहीं गये।

[४]

गोविन्ददास जी की कई वर्षों से विदेश-यात्रा करने की इच्छा थी। वे योरप और अमेरिका, तथा जिन उपनिवेशो में भारतीय बसे हैं, वहाँ जाना चाहते थे। केन्द्रीय असेम्बली में उपनिवेशों का कोई न कोई प्रश्न सदा ही उठा करता है। सन् १९३७ में जंज़ीबार लौंग का प्रश्न उठा हुआ था। गोविन्ददास जी असेम्बली में औपनिवेशिक प्रश्नो पर काफी दिलचस्पी लेते थे और उनका उपनिवेशों मे बसे हुए भारतीयों से पत्र-व्यवहार भी चला करता था। इस वर्ष उनको पूर्वी आफ्रिका के जंज़ीबार, टांगानिका और

युगांडा के उपनिवेशो ने बुलाया था। दक्षिण आफ्रिका मे इस समय भारत सरकार के एजेन्ट सर रज़ा अली थे, जो कौंसिल आफ स्टेट में गोविन्ददास जी के साथी रह चुके थे। उन्होने गोविन्ददास जी को दक्षिण आफ्रिका आने के लिए लिखा। गोविन्ददास जी ने आफ्रिका जाने का निश्चय कर लिया। असेम्बली के शिमला अधिवेशन के बाद वे इस संबन्ध मे महात्मा गाँधी से मिले और १० नवम्बर को 'टायरिया' जहाज़ से पूर्व और दक्षिण आफ्रिका के लिए रवाना हो गये। उनके साथ उनके दामाद सेठ लक्ष्मीचद जी भी गये थे।

गोविन्ददास जी ने ब्रिटिश पूर्व आफ्रिका के कीनिया, जज़ीबार, टांगनिका और युगांडा, पोर्चुगीज़ पूर्व आफ्रिका के मोजविक, वैरा और लुरैंकोमारक्विस तथा दक्षिण आफ्रिका के ट्रांसवाल और नैटाल का बडा सफल दौरा किया। यद्यपि वे किसी के प्रतिनिधि होकर नही गये थे, और व्यक्तिगत हैसियत से गये थे, जो उन्होने रवाना होने के पूर्व एक प्रेस स्टेटमेन्ट में स्पष्ट कर दिया था, तथापि उनका सभी स्थानो पर महान् स्वागत और सत्कार हुआ। गोविन्द-दास जी के हिन्दी और अँग्रेज़ी भाषणो का वहाँ बड़ा प्रभाव पड़ा। वहाँ के समाचार पत्रो ने उनके कार्य की बड़ी सराहना की और लिखा कि महात्मा गान्धी के अतिरिक्त मि० गोपाल कृष्ण गोखले, श्रीमती नायडू और मि० श्री निवास शास्त्री के बाद उन उपनिवेशो में ऐसा कोई व्यक्ति नही पहुँचा, जिसका गोविन्ददास जी से अधिक प्रभाव पड़ा हो। जज़ीबार के लौंग के आन्दोलन को भी गोविन्ददास जी के इस दौरे से बहुत सहायता मिली। दक्षिण

आफ्रिका से भारत लौटते हुए गोविन्ददास जी जंजीबार में फिर उतरकर उपनिवेशो के अन्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट लार्ड डफ़रिन से भी मिले, जो इसी झगड़े के कारण जंजीबार आये हुए थे।

सेठ गोविन्दास जी को आफ्रिका के दौरे मे १० सप्ताह लगे। जब गोविन्ददास जी आफ्रिका लौट कर बंबई में उतरे तब उनका वहाँ सार्वजनिक स्वागत हुआ और 'इन्डियन इम्पीरियल सिटीजनशिप एसोसियेशन' के दफ्तर मे उसके सभापति सर पुरुषोत्तम दास ठाकुरदास तथा उसकी कार्यकारिणी ने गोविन्ददास जी को चाय-पार्टी दी।

भारत लौटकर गोविन्ददास जी ने इन उपनिवेशो के संबन्ध में अपनी एक विस्तृत रिपोर्ट लिख कर हरिपुरा में कांग्रेस-सभापति के सामने पेश की। यह रिपोर्ट वहाँ के संबन्ध मे ज्ञातव्य बातों से ओत प्रोत भरी हुई है। इस पर भारतवर्ष और आफ्रिका दोनों ही देशों के समाचार पत्रो में बहुत समय तक चर्चा चलती रही। आफ्रिका पर सेठ गोविन्ददास जी हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनो ही भाषाओ में एक ग्रन्थ भी लिख रहे हैं।

गोविन्ददास जी आफ्रिका जाते समय रेवरेन्ड एन्ड्रूज़ से भी मिलकर गये थे, क्योंकि एन्ड्रूज़ साहब उपनिवेशो के मामलो में विशेषज्ञ माने जाते हैं। गोविन्ददास जी के दौरे के विषय में मि० एन्ड्रूज़ को आफ्रिका मे बसे हुए अनेक भारतीयो ने पत्र लिखे। इस सफल दौरे पर गोविन्ददास जी को एन्ड्रूज साहब ने अनेक बधाइयाँ दी तथा उनके दौरे, उनके कार्य और उनकी रिपोर्ट पर समाचार पत्रो में अनेक लेख भी लिखे।

[५]

हरिपुरा मे कांग्रेस ने महाकोशल का निमत्रण स्वीकार कर लिया था। जिस दिन निमत्रण दिया गया उस दिन गोविन्ददास जी हरिपुरा में नही थे, पर महाकोशल के लोग जानते थे कि निमत्रण स्वीकृत होने पर किसके सिर कांग्रेस-अधिवेशन का बोझ पड़ेगा। महाकोशल बहुत बड़ा प्रान्त नही है, बहुत धनवान भी नही है। प्रान्त में न बड़े बड़े उद्योग धंधे हैं और न गत बारह वर्षों से फसलें ही अच्छी आयी हैं। आज कल कांग्रेस अधिवेशन का मतलब कितना परिश्रम और कितना रुपया है, यह सभी जानते हैं। गोविन्ददास जी को बंम्बई मे समाचार मिले कि अगामी कांग्रेस महाकोशल में होगी। पहले तो वे स्तब्ध रह गये, पर शीघ्र ही उन्होंने अपना कर्त्तव्य-पथ निश्चित कर लिया। उसी दिन से कांग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाने का प्रयत्न ही उनके दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न रहा है। इसके लिए उन्होंने जैसा अविरत परिश्रम किया, जिस प्रकार वे घूमे भटके, जिस तरह उन्होंने न भोजन की चिन्ता की और न नीद की, उसे प्रान्त का बच्चा बच्चा जानता है। यदि उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन की सफलता के लिए इस तत्परता, लगन और परिश्रम से काम न किया होता तो महाकोशल मे कांग्रेस करने में कितनी कठिनाई होती यह इस प्रान्त के किसी भी व्यक्ति से छिपा नही है, और सभी दल वाले इसे स्वीकार करते हैं।

महाकोशल ने उन्हें ही एक मत से त्रिपुरी कांग्रेस का स्वागता-ध्यक्ष चुना है। प्रान्त ने अपने इस अनन्य सेवक और सर्वमान्य

नेता को सदा ही अपने सिर और आँखों पर रखा। अनेक बार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का सभापति बनाया, प्रान्तीय परिषद् का अध्यक्ष चुना, अनेक बार केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं में भेजा, और इस बार जो सर्वोच्च पद प्रांत उसे दे सकता था, वह भी दे दिया।

यदि महाराष्ट्र को लोकमान्य तिलक का गर्व है, पंजाब को लाला लाजपतराय का गर्व है, बंगाल को देशबंधु दास का गर्व है, बिहार को राजेन्द्र बाबू का गर्व है, गुजरात को सर्दार पटेल का गर्व है, संयुक्त प्रांत को जवाहरलाल नेहरू का गर्व है, तो महाकोशल को भी अपने केसरी सेठ गोविन्ददास का गर्व है।

आठवाँ अध्याय

सिंहावलोकन

व्यक्तित्व

गोविन्ददास जी का व्यक्तित्व प्रभावशाली और आकर्षक है। उनकी बड़ी बड़ी आखें, और उन पर काली काली घनी तथा चौड़ी भवें, यद्यपि सफ़ेद चश्मे से ढकी रहती हैं, फिर भी उनका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। सुन्दर एव गौर वर्ण चेहरा तथा गठा हुआ शरीर है। मुख पर रहने वाली मुस्कराहट और मृदु भाषण आकर्षक हैं। सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है उनके श्रेष्ठ कुटम्ब की, और उनके व्यक्तिगत महान त्याग तथा सेवा की, स्मृति के कारण, जो छाया के सदृश उनके साथ ही रहती है। उनकी अवस्था अब यद्यपि ४३ वर्ष की है पर स्वस्थता के कारण देखने में वे ३७, ३८ वर्ष से अधिक नहीं दिखते।

गोविन्ददास जी का स्वभाव सरल और शान्त है। उनको क्रोध नहीं आता, यह तो नहीं कहा जा सकता, पर यह अवश्य कहा जा सकता है, कि बहुत कम आता है। उनके स्वभाव में कुछ

जल्दी अवश्य है। कभी कभी अचानक वे किसी बात को सुन घबड़ा भी जाते हैं, पर बहुत शीघ्र अपने को सँभाल लेते हैं। आचार-व्यवहार उनका बड़ा शिष्ट है, और गर्व तो उनको छू तक नहीं गया।

जन-नेतृत्व के उनमें नैसर्गिक गुण हैं। आकर्षक एव प्रभाव-शाली व्यक्तित्व, आत्म-विश्वास, कठिन-परिश्रम, अदम्य-साहस, अध्ययन-इच्छा, अथक-आशावाद, जोश तथा उत्साह, अत्यधिक त्याग, हाथ मे लिये हुए काम को किसी भी प्रकार पूरे करने की प्रवृत्ति, सम्भाषण-शक्ति और ओज-पूर्ण-भाषण इनमे मुख्य हैं। सर्व-गुण सम्पन्न व्यक्ति को भी जो आलस्य निकम्मा बना देता है, वह उनके पास तक नही फटक सका। प्रकृति ने उन्हे इतनी ऊँची आवाज़ दी है कि बिना लाउड स्पीकर की सहायता के ही हज़ारो आदमी उनका भाषण सुविधा-पूर्वक सुन सकते हैं।

उन्होंने स्वावलम्बी होने का बड़ा यत्न किया; फिर भी दूसरो पर निर्भर रहने की उनकी आदत सर्वथा नही जा सकी। स्वयं हाथ से नहाना तो उन्होने जेल मे सीखा और अभी भी यदि उनके साथ कोई नौकर न रहे तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है। दूसरों पर निर्भर रहने की उनकी किसी किसी कृति पर तो हँसी आ जाती है। जैसे वे कभी सड़को को याद नहीं रख सकते। जबलपुर तक की सड़कें उन्हे नही मालूम। उनकी रास्ता भूलने की इस विचित्र आदत को देखकर सस्कृत नाटको के कंचुकी का स्मरण आ जाता है, जो राजा को उसके महल तक का रास्ता

बताते हुए उसके आगे आगे चलता और यह कहता था 'इतो इतो राजन्'।

सच्चरित्रता गोविन्ददास जी मे सदा रही है, और जो शान-शौकत और ठाट-बाट था, वह असहयोग में सम्मिलित होने के बाद चला गया। जो कुछ बचा-बचाया था, वह भी धीरे-धीरे चला ही जा रहा है। उनका जीवन नितान्त सादा और निर्व्यसनी है, पान तक खाने की उन्हे आदत नही, और सिगरेट तक को उन्होने नही छुआ। अंग्रेजी के एक शब्द से उनके जीवन का ज्ञान हो जाता है। वे हर दृष्टि से पूरे 'प्योरिटन' हैं।

उनकी दिन-चर्या बड़ी व्यवस्थित है। सूर्योदय से पहले उठना, शौचादि से निवृत्त हो घन्टे पौन घन्टे चहल-कदमी करना, उसके बाद स्नान-पूजन कर ठीक समय मन्दिर में दर्शन करना, भोजन के समय भोजन कर, बाकी के समय मे से एक एक क्षण का कार्य मे उपयोग कर, दस बजे रात्रि के पहले सो जाना, इसमें बड़ी कठिनाई से ही कभी अन्तर पड सकता है। दौरे में भी यह कार्य-क्रम इसी भाँति चलता है, यहाँ तक होता है कि रेल के डब्बे तक में वे चहल-कदमी करने का प्रयत्न रकते हैं। चुनाव, या सत्याग्रह सदृश असाधारण समयों की तो दूसरी बात है, अन्यथा उनकी दिनचर्या में कभी गड़बड नहीं हो सकती। निश्चित किये हुए समय पर ठीक स्थान पर न पहुँचने और दूसरो का समय नष्ट करते हुए शायद ही किसी ने उन्हे देखा हो। इसी प्रकार बिना कार्य के दूसरे के द्वारा अपना समय भी नष्ट कराना उन्हें स्वीकार नहीं। जो समय नियुक्त कर उनसे मिलने जाता है,

उसे यदि मुलाकात की प्रतीक्षा मे समय नष्ट नही करना पड़ता, तो आवश्यकता से अधिक समय उसे मिलता भी नही। बात पूरी होने के बाद यदि वह स्वयं नही उठता तो गोविन्ददास जी उठकर उससे पूछ लेते हैं—"कहिए और तो कोई काम नहीं है?" हाँ, उनका आचार-व्यवहार अवश्य इतना शिष्ट होता है कि उनके इस प्रकार के बर्ताव से भी किसी को अप्रसन्नता नही हो पाती। घड़ी के काँटे की तरह चलना उनके लिए एक स्वाभाविक बात हो गयी है; और इसमे सहायता देती है उनके सदा साथ में रहनेवाली उनकी नोट बुक। इसीलिए प्रत्येक दिन का उनका कार्य उसी दिन निपट जाता है और कोई भी कार्य स्थगित नही रहता। उनके अच्छे स्वास्थ्य और अधिक कार्य कर सकने के यही रहस्य हैं।

व्यवहार

सयमी गोविन्ददास जी का जीवन सब मिलकर सुखी है। घर में पिता और माता से, पत्नी और सन्तानों से, नातेदारो और मित्रो से, सभी से, उनका अटूट प्रेम है; उनकी माता तो शील और त्याग की मूर्ति हैं, और माता पर उनकी अत्यधिक श्रद्धा एवं भक्ति है। उनके जीवन पर उनके पितामह और माता का ही सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। पत्नी पर उनका अनन्य प्रेम है, और अपने दोनो पुत्रो, पुत्रियो एव दामाद पर भी उनका अत्यधिक स्नेह। राजनैतिक मतभेदों के होते हुए, और घर

की संपत्ति से त्याग-पत्र देते हुए भी, उनके और उनके कुटुम्बियो के परस्पर प्रेम में कोई अन्तर नही पडा। कभी कभी और ख़ासकर त्याग-पत्र के अवसर पर, उनके पिता के और उनके बीच में कुछ मनोमालिन्य अवश्य हुआ, पर स्नेह की पवन ने उस काले बादल को शीघ्र ही ध्वस कर दिया। यद्यपि त्याग-पत्र के बाद उस सपत्ति से गोविन्ददास जी ने कभी पाई भी नही ली, परन्तु प्रेम और अर्थ में अन्तर है, यह उन्होने सिद्ध कर दिया, साथ ही उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि प्रेम उन्हें उनके कर्तव्यों को करने में नही झुका सकता। गोविन्ददास जी और उनके कुटुम्बियो के बीच की प्रेम-शृ खलाओं के इतने कड़े रहने पर भी, और गोविन्ददास जी के सिद्धान्तों और उनके कुटुम्बी-जनो के सिद्धान्तो मे दिन और रात का अन्तर रहने पर भी, ये प्रेम-शृ ख-लाएँ उन्हें घर में ही बद्ध न रख सकी। उन्होंने दोनो प्रयत्न किये—अपने कर्तव्यो का पालन किया और कुटुम्बियो से झगडे के अवसरों को बचाया। त्याग-पत्र देने के अवसर पर जब उन्होने देखा कि अब झगड़ा बचना कठिन है, तब उन्होंने सारी सपत्ति को ही लात मार दी। इन झगडो को बचाने के लिए गोविन्ददास जी सदा एक ही उपाय को काम में लाते हैं—जहाँ तक होता है वे घरवालो मे बिना कोई वाद-विवाद, बहस-मुबा-हसा किये अपने सिद्धान्तों पर चलते रहते हैं। यदि कोई कुटुम्बी-जन उनसे किसी ऐसे मामले पर बात भी करना चाहता है, तो वे उस मौक़े को ही बरका देने का प्रयत्न करते हैं। एक

बात उन्होंने और की। जहाँ अपनी सैद्धान्तिक बातो पर वे कभी नहीं झुके, वहाँ अन्य बातो को उन्होंने दूसरों की इच्छा के अनुसार होने दीं और उसमें हस्तक्षेप नही किया। इसका जहाँ यह फल हुआ कि घर का कलह बचा, वहाँ आर्थिक दृष्टि से घर को वहुत हानि भी उठानी पडी। घर का प्रबन्ध बहुत शिथिल रहा और घर मे अनाप-सनाप ख़र्च हुए।

गोविन्ददास जी अपने कुटुम्बियो का ध्यान भी बहुत रखते हैं। 'राजा गोकुलदास महल' मे वे नही रहते, पर जब जबल-पुर में रहते हैं तब नित्य प्रति जाकर माता और पिता के दर्शन करते, तथा जितने समय तक हो सकता है, उनके पास बैठते हैं। यही बात वे अपनी पत्नी तथा बच्चो के संबध में भी करते हैं। यदि कोई घर का व्यक्ति उनके साथ बाहर जाता है, तो वे मेह-मान के सदृश उसका ध्यान रखते हैं। बच्चों से मित्रो के सदृश बातें तथा वाद्‌विवाद तक करते हैं, और चूँकि उनकी दिनचर्या इतनी नपी-तुली रहती है, इसलिए उन्हे अत्यधिक सार्वजनिक कार्य करते हुए भी, यह सब कर सकने का समय मिल जाता है।

गोविन्ददास जी का गृह-जीवन जैसा सुखी है, सार्वजनिक जीवन भी वैसा ही सफल है। उनके शत्रु नही हैं, यह बात नहीं, पर शत्रु बहुत कम हैं। उनके सरल व्यवहार और मृदु भाषण के कारण, जो उनसे एक बार भी मिल लेता है, वह उन्हे

कभी नहीं भूल सकता। उनके मेहमानो को कभी यह कल्पना नहीं होती कि वे दूसरे के घर में ठहरे हैं। गोविन्ददास जी उनसे इतने हिल-मिल जाते हैं कि वे अपने घर मे रहने का ही अनुभव करते हैं। वे उनके पास स्वयं जाकर पूछते कि कोई उनको तकलीफ तो नही है।

गोविन्ददास जी अपने नौकरो को कभी नौकर नहीं समझते। वे उन्हे सदैव अपना सहायक समझते और जब कभी उन्हें तकलीफ मे देखते तो उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं। वे उनसे भी खुलकर और हँसकर बातें किया करते हैं। जैसा लिखा जा चुका है, वे समय-बद्धता का विशेष ध्यान रखते हैं अतः अपने प्रोग्राम में उनके द्वारा बाधा हुए बिना, वे कभी उन पर क्रोध नहीं करते। और यह क्रोध उनका क्षणिक होता है और बाद में वे स्वय उनसे प्रेम से बोलने लगते हैं।

वे अत्यन्त नम्र हैं। एक धनिक कुटुम्ब में जन्म पाने और 'कोशल-केसरी' कहे जाने पर भी उन्हें अभिमान ने छुआ तक नहीं है। उनके हिन्दी पत्रों का अन्त सदैव 'कृपा रखिए, कष्ट के लिए क्षमा कीजिए, यथा-योग्य सेवा लिखते रहिए,' आदि से होता है और इनका प्रयोग वे छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए भी किया करते हैं।

सिद्धान्त

गोविन्ददास जी का जीवन बिना नींव का नही है। कुछ सिद्धान्तो की नीव पर उनके जीवन की भित्ति खड़ी है। वे 'गांधी-वाद' के अनुयायी हैं, पर अन्ध अनुयायी नही। यद्यपि समाज-वाद (सोशल-इज़िम) के आर्थिक पक्ष के साथ उनकी सहानुभूति है, परन्तु बचपन के धार्मिक सस्कारो, तथा उन संस्कारो के बाद उन सस्कारो की अपने स्वयं के अध्ययन से पुष्टि, के कारण उनका समाज-वादी बनना सभव नही। समाज-वाद सर्वथा आधि-भौतिक है, वह इस दृश्य-जगत के परे भी कुछ है, इसे मानता ही नही। गोविन्ददास जी को इस दृश्य-जगत की चहार-दीवारी के भीतर रहने से सन्तोष नहीं। वे कट्टर ईश्वर-वादी हैं और ईश्वर-वाद मे वेदान्ती। सारे विश्व का प्रादुर्भाव एक तत्त्व से हुआ, उसीमें उसका लय होगा, और यथार्थ में विश्व एक ही तत्त्व है, तथा माया के कारण उसमे विभिन्नता दिखती है, इसमे गोविन्ददास जी का अटल विश्वास है। आधुनिक विज्ञान भी समस्त विश्व को एक तत्त्व मानता है, परन्तु वह उस तत्त्व को जड़ मानता है, वेदान्त चैतन्य। गोविन्ददास जी भी उसे चैतन्य मानते हैं, और चूँकि वे उसे चैतन्य मानते हैं, इसलिए वे कहते हैं, कि मनुष्य, जो सृष्टि का सर्व-श्रेष्ठ प्राणी है, उसके सारे कार्य उसी की उपासना के लिए होना चाहिए। उपासना का अर्थ उसके अधिकाधिक पास जाना है। जो कार्य इस 'पास' ले जाने के कार्य में सहायक

हो, वही उनकी दृष्टि से श्रेष्ठ कार्य हैं। गोविन्ददास जी के मत से, विश्व एक ही तत्त्व है, इसका सबसे अधिक और सच्चा ज्ञान, उपनिषदो से होता है, अतः उपनिषद् उनके परम प्रिय ग्रन्थ हैं। ज्ञान की प्राप्ति के बाद भी मनुष्य कर्म के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। जिसे उपर्युक्त ज्ञान हो गया है उसके कार्यों से अपना लाभ और दूसरे की हानि नहीं हो सकती, क्योंकि अपना और दूसरा यह भेद भाव ही उसके मन मे नही आता। अपने और दूसरे में अन्तर मिटाने के लिए दूसरे की सेवा प्रधान कर्म है, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य अपनी सेवा में रत रहता है, उसी प्रकार दूसरे की सेवा मे रत रहने का उसे यदि अभ्यास हो जाय, तो भेदभाव का समूल नाश हो ही जायगा। इसीलिए गोविन्ददास जी दूसरों की सेवा को ब्रह्म की उपासना का सबसे बड़ा और सच्चा साधन समझते हैं। इस सेवा को निष्काम करने से न तो बन्धन होता है और न दुःख। इसलिए वे गीता के कर्मयोग को कर्म करने की विधि का सबसे बड़ा शास्त्र मान नित्य उसका पाठ करते हैं। ज्ञान द्वारा ब्रह्म को जानना और सेवा द्वारा उसकी प्राप्ति—ज्ञान और कर्म द्वारा ब्रह्म की सच्ची उपासना में बाधा न पड़े—इसलिए वे उस चैतन्य ब्रह्म की प्रार्थना करते हैं। वे श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, और बिना ब्रह्म की 'पुष्टि' मिले मनुष्य अपने मार्ग से विचलित हो सकता है, इसीलिए उनका भगवत स्मरण और प्रार्थना मे विश्वास है। इस प्रार्थना में श्रद्धा रहे, इसलिए वे भक्ति को आवश्यक समझते हैं और निराकार की भक्ति कठिन होने के कारण साकार की भक्ति में उनकी

निष्ठा है। वे पूजन करते हैं, पाठ करते हैं, जप करते हैं, ध्यान करते हैं, प्रार्थना करते हैं, मन्दिर में जाते हैं और जनसेवा में तल्लीन रहते हैं। इन दार्शनिक सिद्धान्तो के कारण गांधी-वाद से उनका मेल-जोल हो सकता है; समाज-वाद से नहीं।

गोविन्ददास जी के इन दार्शनिक विचारों को उनके अनेक नाटको में स्थान मिला है। इन नाटको के कुछ उद्धरण यहाँ देना उपयुक्त होगा।

'कर्तव्य' नाटक में व्याध का बाण लगने के पश्चात् स्वर्गारोहन करते हुए श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं—

"यदि इतने दीर्घ काल तक मेरे सग रहने पर भी आज तुम्हें यह मोह उत्पन्न हो रहा है, तो मेरे सग रहने से तुम्हें लाभ ही क्या हुआ? जब तुम्हारा कर्तव्य समाप्त हो चुकेगा, तब तुम चाहोगे, तो भी इस भूतल पर इस स्वरूप में न रह सकोगे। जो सामने कर्तव्य आये, उसे निष्काम हो करते जाओ। (कुछ ठहर कर)। अच्छा, उद्धव, अब जाता हूँ। देखते हो, सामने का विशाल आकाश-मण्डल और विशाल समुद्र, इसी आकाश में मैं भी व्याप्त हो जाऊँगा, इसी सागर की तरंगों मे मैं भी विचरण करूँगा। देखते हो, उठते हुए बादल, इन्ही बादलो के सग मैं भी क्षितिज पर उठूँगा। देखते हो, बिजली, इसी के सग मैं भी चमकूँगा। देखते हो, सूर्य की किरणें, इनके सग मैं भी आलोकित होऊँगा। चन्द्रमा की ज्योत्सना मे झलका करूँगा और तारों की दमक में दमका करूँगा। पर्वतों, नदियो, झरनो, वृक्षो, लताओ में व्याप्त हो जाऊँगा, और इन सबके परे भी जो कुछ इस सारे विश्व में

दर्शनीय तथा अदर्शनीय, वर्णनीय तथा अवर्णनीय है, मैं समस्त मे प्रविष्ट हो जाऊँगा। सृष्टि के परे भी यदि कुछ होगा तो वहाँ भी मैं होऊँगा। मुझे जाने मे कोई क्लेश नहीं हो रहा है, कोई नही। इस बाण से शरीर को जो कष्ट मिल रहा है, उससे मेरा कोई सम्बन्ध नही, कोई नही। बड़े सुख, बडे उल्लास, बडे आनन्द से मैं जा रहा हूँ। जाता हूँ, उद्धव, जाता हूँ, ऐसे स्थान को जाता हूँ, जहाँ धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, प्रेम-द्वेष, पाप-पुण्य ऐसा द्वंद नही है; जहाँ सभी निर्द्वन्द हैं, एक हैं। इस मुरली के स्वरों के साथ ही जाता हूँ।"

यही विचार 'प्रकाश' नाटक मे एक दूसरे प्रकार से व्यक्त हुआ है।

"प्रकाश—आकाश में स्थित उषा की द्युति, दिन के प्रकाश, सध्या की प्रभा, रात्रि के अन्धकार, सूर्य, चन्द्र, तारागण, मेघ, दामिनी शक्र-धनुष में, पृथ्वी पर स्थित पर्वतों, नदियो, वनों, उपवनों, वृक्षो, पल्लवो, पुष्पों, फलों, गृहो, मार्गों में, नभचरों, जलचरो, थलचरों में, अपने स्वय के गृह और उसकी वस्तुओं में, तू अपने प्रकाश, प्यारे प्रकाश को देखना; माँ, प्यारी माँ, यदि तू प्रयत्न करेगी तो तुझे तेरा प्रकाश सर्वत्र दृष्टिगोचर होगा, अवश्य होगा"

'हर्ष' नाटक में यही विचार एक तीसरे ढग से पाया जाता है।

"हर्ष—परन्तु, देखो, तुम्हारे ये सदगुण तुम्हारे एक विवेकहीन विश्वास के कारण तुम्हें ठीक पथ पर न चलाकर पथ-भ्रष्ट कर रहे

हैं। आदित्यसेन, तुम मुझे वृथा ही गुप्त-वंश का शत्रु मान रहे हो। मैंने अपने वंश का गौरव चढ़ाने के लिए यह राज्य ग्रहण नहीं किया है। मेरे विवाह न करने के कारण वर्द्धन-वंश का तो कोई वंशज ही न रहेगा। अपने उत्कर्ष के लिए भी यह पद मैंने नहीं लिया है, यदि ऐसा होता तो मै स्थाण्वीश्वर को कान्यकुब्ज का माण्डलीक राज्य क्यों बनाता? पुत्र, मुझे अपने से और अपने वश से कभी आसक्ति का अनुभव नहीं हुआ, न किसी विशिष्ट धर्म और देश से ही अनुराग। इस विशाल विश्व को ही अपना देश मान, सारे धर्मों पर समान रूप से श्रद्धा रख, और अपने-पराये सभी को अपना बन्धु समझ, मैंने अपने जीवन का अब तक का समय व्यतीत करने का प्रयत्न किया है।"

जिस समय गोविन्ददास जी ने सेवा-पथ मे पदार्पण किया उस समय उनकी क्या भावनाएँ थीं, यह तो नही कहा जा सकता, और सभव है कि उस समय उसमें 'लोकेषणा' की ही भावना अधिक रही हो, परन्तु धीरे धीरे उनकी भावनाओ मे किस प्रकार विकास हुआ, इसका पता भी गोविन्ददास जी के कुछ नाटको से लगता है। सन् १६१७ में उन्होने 'विश्वप्रेम' नामक नाटक लिखा था। फिर कई वर्ष तक उनका लिखना बन्द रहा। सन् १९३० में उन्होंने 'प्रकाश' नाटक लिखा और सन् १९३३ मे 'सेवापथ'। 'प्रकाश' नाटक तो प्रकाशित हो चुका है पर 'विश्व-प्रेम' और 'सेवा-पथ' अभी अमुद्रित हैं। इन तीनो नाटको के कुछ अश उनके मानसिक विकास को समझने के लिए यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

'विश्व प्रेम' नाटक में वे 'प्रेम' और 'सेवा' के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"प्रमोदिनी—वत्स, प्रेम और लालसा में आकाश-पाताल का अन्तर है; प्रेम मे कामना नहीं है, वासना नही है। जहाँ कामना नही, वासना नही, वही सुख है। ऐसा सुख केवल प्रेम से उत्पन्न होता है। इस प्रेम का पात्र समस्त विश्व है। ऐसे प्रेमी को कभी वियोग का दु:ख नही, भय नही, क्रोध नही, लोभ नहीं, मोह नही, कभी चिन्ता नहीं, कभी द्वेप नही। प्रेमी को किसी वस्तु विशेप की इच्छा नही। जहाँ कोई इच्छा हुई, वहाँ प्रेम नहीं रहा, वहाँ लालसा है। यह पराधीनता ही दु:ख की जड़ है। प्रेम और लालसा में भारी अन्तर है। इसमे जितना सुख है, उसमें उतना ही दु:ख है। जिस मनुष्य को इस प्रेम-पथ पर चलना होता है उसे स्वार्थ का त्याग कर देना पड़ता है। इस नष्ट होने वाले शरीर की, इन अनित्य इन्द्रियो की लालसा से सदा के लिए उसे अपना मुख मोड़ लेना पड़ता है।

स्वार्थ मूल अब, प्रेमी बनकर, प्रेम सभी से ठान।
तज कर भेद भाव यह सारा, समता सबमें मान।
प्रेम रूप हो, विमल प्रेम की, कीर्ति सदैव बखान।
अन्त समय तक चल, इस पथ पर सफल जन्म तब जान।

"मोहन—आज के पश्चात् किसी व्यक्ति या किसी स्थान से प्रेम करना क्या मेरे पथ से विचलित होना होगा ?

"प्रमोदनी—कदापि नही, हाँ, उसमें लालसा का समिश्रण

होना अवश्य पथ-भ्रष्ट होना होगा। बेटा, विश्वप्रेम का पथिक किसी भी व्यक्ति या स्थान से प्रेम कर सकता है।

"मोहन—अच्छा।

"प्रमोदिनी—विश्व क्या है ? सारे व्यक्तियों और स्थानों की समिष्टि ही तो विश्व बनाती है। निकटवर्ती व्यक्तियो और स्थानो पर प्रेम का प्रदर्शन होना स्वाभाविक है, क्योकि मनुष्य की पहुँच सारे विश्व में नहीं हो सकती। जिस प्रकार समुद्र की लहर जिस स्थान से उठती है, वहाँ अधिक ऊँची होती है, और जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है, स्वभावतः छोटी होकर विलीन हो जाती है, उसी प्रकार विश्व-प्रेमी का प्रेम भी निकटवर्ती वस्तुओ और स्थानो पर अधिक प्रदर्शित होता है; किन्तु इसका वह अर्थ नही है कि शेप विश्व से उसका प्रेम नही है। यह नहीं हो सकता कि उसके हृदय में किसी से प्रेम हो और किसी से घृणा। सब पर प्रेम-दृष्टि उसका स्वाभाविक गुण हो जाता है।

वाह्य प्रशंसा और जय-जयकार से गोविन्ददास जी को सन् १९३० से ही ग्लानि होने लगी थी। यह उनके 'प्रकाश' नाटक से मालूम होता है। वे लिखते हैं—

"प्रकाशचन्द्र—पर, माँ, कर्तव्य का पथ तो, तू ही कहती थी, कि, फूलो का न होकर, काँटो का होता है। ससार मे सभी के लिए यह पथ ऐसा ही रहा है। यह पथ तो दान का ही पथ है, ग्रहण का नहीं।

"तारा—हाँ, मैं ही कहती थी; पर, तू उसी पथ का पथिक होगा, यह मैं कहाँ जानती थी ?

"प्रकाशचन्द—ऐसे कॉटे वाले पथ का पथिक होने पर भी मुझे एक विचित्र प्रकार का सुख हुआ है, माँ, और उसका कारण है।"

"तारा—क्या ?

"प्रकाशचन्द्र—मेरा जीवन निरुद्देश नहीं रह गया। उद्देशमय जीवन में एक विचित्र प्रकार का सुख होता है, इसका अब मैं अनुभव करने लगा हूँ फिर मैं यह भी जानने लगा हूँ कि कुछ लोग ससार को प्रसन्न करने के लिए कर्तव्य करते हैं।

"तारा—और तू ?

"प्रकाशचन्द्र—मैं आपने को प्रसन्न करने के लिए करता हूँ। मैं नहीं जानता कि, जिसे मैं अपना कर्तव्य कहता हूँ, उससे संसार प्रसन्न होता है या नहीं, मेरे हृदय को उससे अवश्य प्रसन्नता होती है और फिर प्यारी माँ, ... (रुक जाता है और तारा की ओर एक टक देखने लगता है)।

"तारा—फिर क्या ?

"प्रकाशचन्द्र—फिर ? फिर माँ, जब इस कर्तव्य को मैं अपने हृदय में प्रतिष्ठित तेरी भव्य मूर्ति को अर्पित करता हूँ तब तो मेरे आनन्द की सीमा नहीं रह जाती।

"तारा—बेटा, प्यारे बेटा !

"प्रकाशचन्द्र—(माँ की ओर देखते हुए कुछ ठहर कर) क्यो, माँ तुझे मेरे इस आदर, इस जय-जयकार, इन जुलूसो से बड़ा हर्ष होता है ?

"तारा—अवश्य होता है, बेटा, तुझे नहीं होता ?

"प्रकाशचन्द्र—(लम्बी साँस लेकर) यदि इन सबमें सत्यता

होती, उच्च हृदय के सच्चे भावो का समावेश होता, तो अवश्य होता।

"तारा—(आश्चर्य से) ये सब सच्चे नही है ?

"प्रकाशचन्द्र—जितने होते हुए तू देखती है, उतने सच्चे नहीं हैं।'

"तारा—यह कैसे ?

"प्रकाशचन्द्र—कुछ लोग तो, इसमें सन्देह नहीं कि, मेरा सच्चे हृदय से आदर, हृदय के सच्चे आवेग से जय-जयकार करते हैं, परन्तु उन्हीं आदर करने वालो, उन्ही जय-जयकार बोलने वालो में अनेक ऐसे कलुषित हृदय के लोग भी हैं—जो मन में मुझसे घृणा करते हैं, मन मे मुझसे ईर्षा रखते हैं, मन मे मेरे बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर जलते हैं और मेरा विनाश तक कर डालना चाहते हैं, परन्तु ऊपर से विवश होकर उन्हे मेरा आदर करना पड़ता है, मेरी पराजय चाहने पर भी, उच्च स्वर से मेरा जय-घोष बोलना पड़ता है।

"तारा – अच्छा !

"प्रकाशचन्द्र—इनसे तेरा काम न पड़ने के कारण तुझे इनका अनुभव नहीं हो सकता, माँ, पर मैं ऐसे लोगो को मुखो से पहचान सकता हूँ। फिर, कई ऐसे हैं जो मेरे कार्यों को लेशमात्र नही समझते, परन्तु सबके साथ मित्र मेरे आदर और जय-घोप में सम्मिलित हो जाते हैं।

"तारा—और सच्चे कितने होंगे, बेटा ?

"प्रकाशचन्द्र—बहुत कम, परन्तु, माँ, इस आदर और जय-घोष से चाहे हृदय मे क्षणिक उत्साह भर जाय, चाहे हृदय को

क्षणिक आनन्द मिल जाय, पर यथार्थ में सच्चे और स्थायी आनन्द देने की वस्तु ही नहीं है। अब मुझे अनुभव होने लगा है, माँ, कि सच्चा आनन्द बाहर के आदर और जयघोप से प्राप्त नहीं होता, उसकी उत्पत्ति भीतर से होती है। जब मैं अपने किसी भी कर्तव्य को, सचाई से, निस्वार्थ भाव से, पालन करता हूँ, और उस पालन को, अन्तःकरण के भीतर प्रतिष्ठित तेरी उदासीन तथा सकरुण प्रतिमा के चरणों में .... । (चुप होकर तारा की ओर एक टक देखने लगता है ।)

"तारा—हाँ, चरणो में क्या ? चुप क्यो हो गया ?

"प्रकाशचन्द्र—चरणो मे भेंट करता हूँ, माँ, प्यारी माँ, उस समय जिस सच्चे आनन्द की मुझे प्राप्ति होती है, वह वर्णनातीत है ।

'सेवा पथ' में गोविन्ददास जी की सच्ची भावनाओ का दिग्दर्शन होता है—

"दीनानाथ—देखो स्वार्थ का मूलोच्छेदन केवल विषय-भोगों के त्याग से ही नही होता ।

"कमला—तो फिर विषय-भोग का त्याग निरर्थक है, आपने व्यर्थ ही इतना कष्ट पाया और पा रहे हैं ?

"दीनानाथ—नही, उनका त्याग तो आवश्यक है, बिना उनके त्याग के सेवा-पथ में पैर रखना ही असंभव है, जिस प्रकार लम्बी से लम्बी यात्रा के लिए भी पहले क़दम की आवश्यकता है, उसी प्रकार मेरे सेवा-पथ की यात्रा के लिए विषय-भोगो का त्याग पहला कदम, पहली सीढ़ी है। विषय-भोग के त्याग और

अपने सिद्धान्त की अटलता मे विश्वास होने पर अपने पथ पर चलने की आत्मशक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है, परन्तु उसे स्वार्थ के आक्रमणो से बचाने का फिर भी सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है। अच्छे से अच्छा घुड़सवार बुरी से बुरी तरह गिरता भी है। मेरे पथ का पथिक भी बिना गिरे अपने निर्दिष्ट स्थान को नही पहुँच सकता। कीर्ति सुनने की लालसा और बुराई सुनने से क्रोध एवं शोक, ये दोनो भी तो स्वार्थ से उत्पन्न होते हैं। इस घाटी को लाँघने और यदि इसके लाँघने में पतन हो तो उस पतन के पश्चात् और दृढ़ता से उठकर चलने की आवश्यकता है।

"कमला—आप न जाने इस संसार को किस दृष्टि से देखते हैं। प्राचीन काल के बड़े से बड़े त्यागी ऋषि, मुनिओं और राजर्षि नरेशो तथा इस समय के बड़े बड़े नेताओं—सभी को अपनी कीर्ति सुनने की अभिलाषा रही है, और है, किसी को अपनी बुराई अच्छी नही लगी और न लगती है।

"दीनानाथ—जिन्हें भी यह लालसा रही है, या है, समझ लो, वे अपने हृदय से स्वार्थ का मूलोच्छेदन नही कर सके, और यही कारण उनके पथ-भ्रष्ट होने का है। कीर्ति-श्रवण की लालसा का स्वार्थ तो कमला, विषय-भोग के स्वार्थ से भी बड़ा है। कई व्यक्ति इसीलिए प्रत्यक्ष में विषय-भोगो का त्याग कर देते हैं कि उनकी कीर्ति होगी। भीतर ही भीतर वे इन विषयो को भी पूर्ण रूप से नही त्यागते, छिपे छिपे वे उनका उपभोग करते हैं।

छुपकर जो कार्य किया जाता है वही पाप है। पाप का यह घड़ा जहाँ फूटा कि ऐसे व्यक्ति पथ-भ्रष्ट हुए, और वह प्रायः फूटता ही है।

"कमला—और जो लोग विषय-भोग सचमुच में त्याग देते हैं, जैसे आपने त्याग दिये हैं?

"दीनानाथ—उसके हृदय में भी कीर्ति-श्रवण का स्वार्थ बना रहता है। सर्वसाधारण से ऊँचे उठने का जो उद्योग करता है, उस पर सर्वसाधारण की दृष्टि लगी रहती है। कोई किसी को, जहाँ तक उससे हो सकता है, अपने से ऊपर नहीं उठने देना चाहता, अतः ऐसे मनुष्यो का सदा छिद्रान्वेषण होता है। कुछ स्वार्थी कभी इनके विरुद्ध मिथ्या अपवाद फैला देते हैं, चूँकि आज ससार में बुराइयों से युक्त ही अधिक मनुष्य हैं, अतः इस प्रकार के मिथ्या अपवादो पर सर्वसाधारण को शीघ्र ही विश्वास हो जाता है। जिनमे अपनी कीर्ति सुनने का स्वार्थ विद्यमान है, ऐसे विषय-भोगो को भी सचमुच त्याग देने वाले व्यक्ति अपनी अकीर्ति श्रवण न कर सकने के कारण पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं। यह स्वार्थ है, कमला, स्वार्थ। . जो मेरी अकीर्ति हुई है उसे मै एक प्रकार की परीक्षा मानता हूँ, कमला, यह भी मेरे पथ की एक सीढ़ी थी। हृदय मे निर्बलता अवश्य आयी, पर विवेक ने . ।

"कमला—मै क्या कहूँ, आपके स्वार्थ-त्याग का पथ ही अद्भुत है। अभी और भी सीढ़ियाँ शेष होंगी?

"दीनानाथ—यह मैं कैसे कह सकता हूँ? जब मैंने इस

पथ पर चलना-आरम्भ किया, तब इसमे कितनी सीढ़ियाँ हैं, यह मुझे कहाँ दिखता था? पहले मैं इस पथ पर चलने के लिए विषय-भोग का त्याग ही यथेष्ट समझता था, पर उसके पश्चात् तो न जाने कितनी परीक्षाएँ देनी पडी, कितनी सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। हर एक इन्द्रिय ने विप्लव किया है, छोड़ी हुई वासनाओ का सुख स्मरण आया है, तुम्हारे और बच्चो के कष्ट ने सताया है, कदाचित इसीलिए विवाह की इच्छा न रहते हुए भी विवाह हुआ था। अनेक लोगो ने एवं अनेक अभिन्न मित्रो तक ने मेरे पथ को नाना प्रकार की आलोचनाएँ की हैं, हँसी उड़ाई है।

"कमला—पर फिर भी आपने अपना पथ परिवर्तित कहाँ किया?

"दीनानाथ—हाँ परिवर्तित तो नही किया, पर अनेक वार हृदय में सन्देह अवश्य उत्पन्न हुआ कि मेरा पथ ठीक है या सचमुच ही ठीक नहीं है। अनेक वार भासित हुआ कि यह तो ऐसा पथ है कि जिस पर मैं अकेला ही चल रहा हूँ, कोई साथी तक नहीं। ऐसे अवसरों पर घने जंगल में एक सकरी सी पगदण्डी पर चलने वाले अकेले पथिक को जो दशा होती है, वही मुझे भी अपनी जान पड़ी। पर ··· ··· (रुक जाता है।)

"कमला—पर?

"दीनानाथ—पर उन सब परीक्षाओ को देने के समय, इन सब सीढ़ियों पर चढ़ने के समय, हृदय ने इस प्रकार की निर्वलता नही दिखलायी। जब कीर्ति गयी और अपयश हुआ तब हृदय भी एक

बार निर्बल हो गया। हर्ष की बात है कमला, कि विवेक ने अन्त मे इस परीक्षा मे भी उत्तीर्ण करा दिया। (कमला सिर हिलाती है।) जिस प्रकार सोने की परीक्षा के लिए काली कसौटी है, उसी प्रकार हृदय की परीक्षा के लिए भगवान ने कदाचित् ये बाधाएँ बनायी हैं। बिना सान पर चढ़ाये जिस प्रकार रत्न में दीप्ति नही आती, उसी प्रकार बिना परीक्षाओ के हृदय भी कदाचित प्रकाशित नहीं हो सकता।"

दीनानाथ और कमला के इस सम्वाद के पश्चात् फिर से इस नाटक मे एक बार दीनानाथ और कमला का सम्वाद हुआ—

"दीनानाथ—ठहरो, ठहरो, कमला, तुमने देखा मेरे हृदय का स्वार्थ? पहचाना इस स्वार्थ को? स्वार्थ! ओह (सिर हिलाकर!) यह स्वार्थ बडी अद्भुत वस्तु है। ... .. सुनो, मुझे शक्तिपाल और उसके दल की हार से हर्ष हुआ है। मैं तो चुनाव में खड़ा नहीं हुआ था, न मेरा कोई दल ही था, तुम कहोगे मेरा प्रत्यक्ष तो कोई स्वार्थ नहीं था।...... ठीक है, पर इसमे मेरा सूक्ष्म स्वार्थ था और उसका एक आधार है। जब शक्तिपाल एल-एल० बी० पास हुए थे, उस समय इस बात पर वादविवाद हो गया था कि मुझे क्या करना चाहिए। शक्तिपाल ने मेरे इस त्याग-पूर्ण दीन-सेवा के सेवा-पथ को निरर्थक बता, राजनैतिक सत्ता द्वारा साम्यवाद की स्थापना करना अपना सेवा-पथ बताया था। उनका मत था कि व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग-पूर्ण जीवन और दीनो की सेवा से कुछ नहीं हो सकता, और मेरा मत था कि हर बात के लिए सबसे पहले व्यक्तिगत जीवन के स्वार्थ-

त्याग पूर्ण होने, एवं जब तक दीन-दुखी हैं, तब तक उनकी सेवा करने, की आवश्यकता है। आज अब शक्तिपाल और उनका दल हार गया तब मुझे इसलिए हर्ष हुआ कि एक प्रकार से उनका मत हारा। विषय-वासनाओं के त्याग के पश्चात् अपनी अकीर्ति सुनकर मुझे दुःख हुआ था, क्योंकि कीर्ति सुनने का मेरा स्वार्थ मेरे हृदय मे शेष था। अब अपने विरुद्ध मत की हार सुन मुझे हर्ष हुआ है, क्योंकि मेरा मत ही सर्वोत्तम सिद्ध हो, इसका मुझे स्वार्थ है।

"एक युवक—पिता जी, अपने मत को सर्वोच्च सिद्ध करने का यत्न किये बिना, उस मत के द्वारा संसार की सेवा कैसी हो सकती है?

"दीनानाथ—अपने मत के प्रचार का प्रत्येक को अधिकार है, पर दूसरे का मत मेरे मत से नीचा है, और दूसरे के मत की हार होकर मेरे मत की विजय हो, यह प्रवृत्ति उस मत में आसक्ति है। संसार, उसके सम्मुख सर्वोत्तम मत आते ही स्वयं उसे ग्रहण कर लेता है। तुम लोगों को ये बातें बहुत छोटी छोटी मालूम होती होगी, पर हृदय की ये छोटी छोटी प्रवृत्तियाँ यथार्थ मे बहुत बड़ी शक्तियॉ हैं। इनके अव्यक्त रहने के कारण ये स्थूल दृष्टि से महत्त्व की नही दिख पड़तीं, पर संसार मे विद्युत, वाष्प आदि अव्यक्त शक्तियो के समान ही ये भी बड़ी ही प्रबल होती हैं। यह स्वार्थ बड़ी सूक्ष्म, प्रबल और अव्यक्त शक्ति है, अब तक मैं स्वार्थ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका हूँ, अभी तक यह परास्त नहीं हुआ है। न जाने इस पथ में अभी तक कितनी सीढ़ियाँ शेष हैं; न जाने अभी मुझे कितनी परीक्षाएँ और देनी हैं। हाँ, इतना अवश्य है

कि यात्रा लम्बी उसे ही जान पड़ती है जो थक गया हो, मैं अपनी यात्रा से अभी थोड़ा भी थकित नही हुआ हूँ, थोड़ा भी नहीं।

"दूसरा युवक—पिताजी, जैसे आप हो गये हैं, वैसे हो जाने पर भी आप सदा अपने में दोप ही देखा करते हैं।

"दीनानाथ—(कुछ सोचते हुए) हाँ, क्योकि मै सबसे बड़ा दोष अपने मे दोप न देखने को समझता हूँ।"

सेवा-पथ का पूर्ण पथिक किस स्थान का अधिकारी हो जाता है यह इसी नाटक के निम्न लिखित कथोपकथन में देखिए—

"सरला—बहन, तुम्हारे पति माया के प्रतिद्वन्दता जगत से से ईश्वरी शांति-लोक मे पहुॅच गये हैं।

"कमला—अच्छा।

"सरला—इस लोक की यात्रा उन्होने मन, वचन और कार्य के सयोग से अपने आपको वश में रख, दैहिक और मानसिक पवित्रता एव निष्काम प्रेम सहित, सेवा के मार्ग द्वारा की है। दूसरो के उद्धार का प्रयत्न करते करते उनका स्वय का उद्धार आप से आप हो गया है, उसके लिए सोचने का भी स्वार्थ उन्हें नहीं रखना पड़ा। इस मार्ग में चलते हुए उन्होने अपने और अपने कुटुम्ब के आधिभौतिक सुख रूपी कटको को चूर्ण किया है। समाज की आलोचना, हॅसी और निंदा रूपी दीवालो का लघन किया है। इस यात्रा के लिए विदा के समय वे अकेले थे।

"कमला—इसमें कोई सन्देह नहीं बिल्कुल अकेले थे, कई बार स्वयं कहते थे कि इस पथ में कोई भी मेरा साथी पथिक नहीं।

"सरला—पर उन्हीं अकेले को, जिनकी सेवा वे करना चाहते थे, उनमें, प्रेम के कारण अपना ही रूप दिखायी देने लगा और इस प्रकार उन्होंने पहचान लिया कि मुझमे और सारी सृष्टि में उसी एक ईश्वर का निवास है, जिसके ज्ञान के पश्चात् कोई कभी अकेलेपन का अनुभव ही नही कर सकता।

"कमला—क्या विशद कल्पना है।

"सरला—यही जीवन-मुक्त की अवस्था है, बहन, यही शांति का लोक है; इस लोक की चारो दिशायें प्रेम हैं, जो सत्य के चँदवे से ढकी हैं, दृढ़ता इस लोक की पृथ्वी है; निस्वार्थ सेवा की यहाँ पवन चल रही है और सच्चे एव स्थायी सुख का गान हो रहा है।"

गोविन्ददास जी दार्शनिक और राजनैतिक विचारो का विवेचन हो चुका। उनके सामाजिक विचार कैसे हैं, इस सम्बन्ध में भी यहाँ कुछ उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा।

गोविन्ददास जी समाज-सुधारको में हैं, परन्तु उग्र समाज सुधारको में नही। समाज-सुधार मे वे समाज के बहुमत को साथ लेकर चलना चाहते हैं। वे छुआ-छूत नहीं मानते, विधवा-विवाह के पक्ष में हैं, परदे के सख्त विरोधी है और स्त्रियो को समाज में पुरुषों के अनुरूप ही अधिकार देना चाहते हैं। उनके सामाजिक विचारो का ज्ञान उनके कई नाटको, माहेश्वरी महासभा में दिये गये अनेक भाषणो और सन् १६२६ की जनवरी मे प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के उपाधि-वितरणोत्सव के दीक्षान्त भाषण से लगता

है। इस समय संसार के अनेक देशों एवं भारत में पुरुषो के समान ही स्त्रियो को अधिकार मिलने के अनेक आन्दोलन हो रहे हैं। जर्मनी आदि देशो में इसका विरोध भी हो रहा है। संसार के सामाजिक उत्कर्ष मे इस आन्दोलन का एक विशिष्ट स्थान है। इस सम्बन्ध में गोविन्ददास जी ने अपने जो विचार प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के दीक्षान्त भाषण में प्रकट किये थे, वे माननीय होने के कारण उनके भाषण का कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है—

"प्रकृति ने मातृत्व का भार आप पर रखा है। और सब प्रश्नो पर चाहे कितना भी मतभेद क्यों न हो, यह बात निर्विवाद है कि आप इस जिम्मेदारी से बच नही सकती। अभी हाल ही में बड़े दिन की छुट्टियो मे भारतीय महिलाओ की दो परिषदें—एक ट्रावनकोर में और दूसरी पूना में—हुईं। ट्रावनकोर की परिषद ने जो प्रस्ताव पास किये उन पर आधुनिकता की छाप है। वहाँ पर जो बहनें एकत्रित हुईं थी वे पाश्चात्य देशो की स्त्रियो से किसी भी प्रकार पीछे नहीं रहना चाहतीं। जो जो कार्य पुरुष करते हैं, जो जो जिम्मेदारियाँ पुरुषो ने अपने ऊपर ले रखी हैं, उन सबमें वे हाथ बटाना चाहती हैं। पुरुषो के साथ स्पर्धा तथा समान अधिकार यह उन प्रस्तावों का सार है। पूना-परिषद में प्राचीन भारत के स्त्री-सम्बन्धी आदर्शों पर जोर दिया गया। स्पर्द्धा की निन्दा की गयी। स्त्रियो को केवल घर की स्वामिनी रहने का उपदेश दिया गया। इस प्रकार आप देखेंगी कि स्त्रियो के आदर्शों के सम्बन्ध में स्वयं भारतीय स्त्रियों में भी मतभेद है। पुरुष होने के कारण

मेरा किसी मत पर ज़ोर देना शायद पक्षपात समझा जावे। परन्तु मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि भारत की महिलाओ को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए पुरुषों से लड़ने झगड़ने की ज़रूरत न पड़ेगी। पिछले १५ वर्षों में स्त्रियो की ओर से कोई आन्दोलन हुए बिना ही पुरुषो ने उन्हें अनेक अधिकार दे दिये हैं। मेरा यह निश्चित मत है कि इस देश मे शीघ्र से शीघ्र स्त्रियो को वे सब सामाजिक तथा राजनैतिक अधिकार मिल जाने चाहिए जो पुरुष को प्राप्त हैं। मैं तो विधवा-विवाह के पक्ष में सदा रहा हूँ, परन्तु यदि कोई पुरुष उसका विरोध करता है तो फिर मैं यह व्यवस्था चाहूँगा कि विधुर को भी दूसरा विवाह करने का अधि·कार न रहना चाहिए। साथ ही मैं सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे भी स्त्रियों को वही अधिकार मिलने के पक्ष में हूँ जो पुरुषो को प्राप्त हैं। इसी प्रकार जो अन्य असमानताएँ हैं वे सब शीघ्र से शीघ्र दूर हो जानी चाहिए।

"यह सब हो चुकने पर हमारा स्त्री-समाज आप ही देख लेगा कि क्या कार्य उसके उपयुक्त है और क्या नही। एक ही उदाहरण लीजिए। रक्तपात पूर्ण युद्ध मे भाग लेना यह अब तक पुरुषो का ही काम रहा है। परन्तु आज पाश्चात्य स्त्रियाँ भी उसके लिए तैयार हो रही हैं। एक ओर तो ससार के महान विचारक रक्तपात को मिटाने का उद्योग कर रहे हैं और दूसरी ओर स्त्रियाँ, जो अब तक उससे अलग रही हैं, अपने हाथ लाल करना चाहती हैं! तनिक भी विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि इस मामले मे पुरुष असभ्य और स्त्रियाँ सभ्य रही हैं। पुरुषो की नृशंसता और बर्बरता

का अनुकरण कर स्त्री अपना उत्थान न कर पतन ही करेगी। यह स्त्री की हीनता नहीं, श्रेष्ठता है कि वह सृष्टि करती है और पुरुष संहार करता है। मेरी दृष्टि में मातृत्व का भार स्त्री-जाति पर इतना वड़ा भार है कि उसको निभाते हुए अन्य सभी पुरुषोचित कार्यों को करना उसके लिए असभव है। मेरा यह कदापि अभिप्राय नहीं है कि आज तक जिस जिस क्षेत्र मे पुरुषो ने सफलता प्राप्त की है, उन सभी क्षेत्रो मे स्त्री-समाज असफल रहेगा। हमारे देश का इतिहास ही इस वात का साक्षी है कि प्राचीन काल मे भारतीय स्त्रियो ने धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रो में कितनी सफलता प्राप्त की थी। मैं उन्हे घर के अन्दर बन्द रखने के सर्वथा विरुद्ध हूँ, आज जो भारतीय स्त्रियो की दुरावस्था है, वह तो पिछले हजार वर्षों की भ्रष्ट सामाजिक अवस्था का परिणाम है। यह सामाजिक अवस्था जितनी जल्दी नष्ट कर दी जावे उतना ही अच्छा होगा। मुझे यदि किसी मामले में संदेह है तो यही कि स्त्रियो की आर्थिक स्वाधीनता का जो प्रश्न पाश्चात्य देशो मे उठाया जा रहा है, और जिसका अनुमोदन हमारे देश में भी होने लगा है, वह हमारे स्त्री-समाज के लिए कहाँ तक कल्याणकारी होगा। स्त्री का अर्थोपार्जन करना ही वुरा है, यह मैं नही मानता। प्रश्न है आर्थिक स्वाधीनता का, और वह भी पति के प्रति स्वाधीनता का। मुझे भय है कि यह आर्थिक स्वाधीनता प्रेम-भाव को नष्ट करेगी और मेरे विचार से प्रेम-भाव के विना पति और पत्नी का जीवन ही नीरस और असफल होगा।

"यो तो प्रत्येक व्यक्ति, देश और समाज के जीवन मे कोई न

कोई ऐसा समय आ जाता है, जब कि स्वाभाविक कार्य-विभाजन आप ही आप नष्ट हो जाता है। ऐसे समय को हमारे पूर्वज आपत्ति काल कहते थे और ऐसे समय में अपनी-अपनी मर्यादा को छोड़ जो धर्म वर्ता जाता था, उसे आपद्धर्म कहा जाता था। सच पूछा जावे तो भारत के इतिहास मे वर्तमान काल आपद काल है और स्त्रियो का वर्तमान धर्म आपद्धर्म हो गया है। मैंने आपसे प्रारम्भ मे ही कहा था कि इस समय हमारे सामने सैकड़ों आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याएँ है, जिन्हे मुट्ठी भर शिक्षित पुरुषो तथा स्त्रियो को हल करना है। इसी आपद्धर्म के कारण पिछले दो सत्याग्रह सग्रामो मे हमारी माता तथा बहनो ने घर-द्वार, पति-पुत्र का मोह छोड़ लाठियो के प्रहार सहे और जेल की कड़ी से कड़ी यन्त्रणाएँ भोगी। हमारी इन समस्याओ का अभी अंत नही हुआ। आज भी आपद-काल तथा आपद्धर्म हमारे सामने हैं। महारानी दुर्गावती तथा रानी लक्ष्मीबाई को जिस परिस्थिति ने उत्पन्न किया था, वही परिस्थिति आज भारतीय महिलाओ के हृदय में साहस तथा निर्भीकता को फूॅक रही है। आज तो हमारे सामने स्त्री तथा पुरुषो के अधिकारो का प्रश्न ही नही है। भारत की प्रत्येक संतान, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, हमारी स्वाधीनता की लड़ाई में समान रूप से सैनिक है। जिस किसी भी स्त्री के हृदय में स्पर्द्धा की भावना है, उसे आज से अच्छा अवसर उसकी पूर्ति के लिए न मिलेगा। वे अपने बच्चो को दूध के साथ स्वाधीनता का अमृत पिला सकती हैं और अपने पतियो को अपनी वीरवाणी तथा उदाहरण से रणाङ्गन में लाकर खड़ा कर सकती हैं। पाश्चात्य

देशो में स्त्रियो को साहस के कार्य करने के अवसर नहीं हैं। भारत में जीवन का प्रत्येक क्षण साहस के दिखलाने का निमंत्रण देता है। स्त्री या पुरुष जिस किसी में महात्वाकांक्षा है, अपनी शक्ति के आजमाने का हौसला है, उसे न तो भारत ऐसा देश मिलेगा और न बीसवी शताब्दि ऐसा समय। देश अशिक्षित है, निर्धन है, विदेशियो के शासन में है। करोड़ो को शिक्षा देना, करोडों की गरीबी दूर करना, करोड़ो को आज़ाद करना सरल काम नहीं है। इसे करने के लिए हिम्मत चाहिए। यहाँ स्त्री और पुरुष के कार्य सम्बन्धी झगड़े का प्रश्न ही कहाँ है। जिस किसी भाई या बहन के हृदय में अपने को कसौटी पर कसने की इच्छा हो वह आज ही अपने खरे या खोटे होने की परीक्षा कर सकता है।"

कार्य

गोविन्ददास जी के गत अठारह वर्षों के सार्वजनिक कार्यों की पूरी सूची बनाना कठिन है, क्योंकि इन अठारह वर्षों मे महाकोशल में शायद ही कोई महत्त्व का सार्वजनिक कार्य हुआ होगा, जिसमे उनका हाथ न रहा हो। असहयोग और सत्याग्रह सग्राम में भाग लेने से लेकर छोटे से छोटे लोकल बोर्ड के चुनावो तक में वे लड़े हैं। हिन्दू-मुस्लिम दगों के शान्त करने में अपनी जान को हथेली पर रख झगड़ों के स्थानों पर जाने से लेकर, प्लेग, बाढ़ और अकाल-निवारण-कमेटियों में उन्होंने सेवाएँ की हैं। कौंसिल आफ स्टेट, एसेंबली और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटियों मे भाषण देने से लेकर प्रान्त की एक भी ऐसी महत्त्वशाली कान्फ़रेन्स

या सभा नहीं, जिसको उन्होंने अपने भाषण से प्रभावित न किया हो। जबलपुर के क्रान्तिकारी जुलूसो से लेकर एक राजबन्दी के मुक्त होने के छोटे से छोटे जुलूसो का भी उन्होंने नेतृत्व किया है। इसलिए यहाँ उनके कार्यों का व्योरेवार वर्णन न करके उनके कार्यों के मोटे रूप से कितने विभाग हो सकते हैं, यही कहना पर्याप्त होगा। उनके कार्यों को निम्नलिखित विभागो में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) राजनैतिक कार्य।

(२) साहित्यिक कार्य।

(३) सामाजिक कार्य।

(४) पीड़ितो को सहायता पहुँचाने का कार्य।

उनका कार्य साहित्य-सेवा से आरम्भ हुआ, परन्तु सन् १९२० में राजनीति में प्रवेश करने के बाद सन् १९३० में जेल जाने तक उनका साहित्यिक कार्य एक प्रकार से बन्द ही रहा। राजनीति, और पराधीन देश की राजनीति क्षेत्र ही ऐसा है, जो अन्य सारे कार्यों को बन्द कर देता है। यदि वे जेल न जाते तो संभव था कि फिर से उनका साहित्यिक कार्य आरम्भ ही न होता। सामाजिक कार्य उनका राजनीति में प्रवेश होने के पश्चात् आरम्भ हुआ, क्योंकि इस कार्य से एक प्रकार से उनके राजनैतिक कार्यों को पोषण मिला। उनका सामाजिक कार्य माहेश्वरी समाज, और माहेश्वरी महासभा के समाज-सुधारो के प्रस्तावो का अपने घर में पालन कराने, तक ही सीमित रहा। उनका माहेश्वरी समाज के सामाजिक आन्दोलन मे भाग लेना कुछ व्यक्ति एक संकुचित बात

मानते हैं, परन्तु वे भूल में हैं। जैसा ऊपर लिखा गया है कि सामाजिक कार्य को उन्होने 'अपने राजनैतिक कार्य को पोपण करने के लिए ही किया। माहेश्वरी महासभा के सभापति पद से अजमेर मे सन् १९३४ मे जो भापण उन्होंने दिया था, उसमें इस सवन्ध में प्रकाश भी डाला था। उन्होंने कहा था—

"भिन्न भिन्न राष्ट्रो में भिन्न भिन्न जातियाँ विद्यमान हैं। भारतवर्ष में तो जातियों की सख्या इतनी अधिक है, जितनी कदाचित् ससार के अन्य किसी देश मे नही। अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत की भिन्न भिन्न जातियो की जाति सभाएँ इस भिन्नता को अधिक पुष्ट करने का प्रयत्न करती है एवं भारत के एक राष्ट्र बनाने में बाधक हैं? अन्य जाति-सभाओ का तो मुझे अनुभव नहीं, परन्तु मेरे सार्वजनिक जीवन के आरम्भ से ही मेरा माहेश्वरी महासभा से सम्बन्ध रहा है, और चूँकि माहेश्वरी एवं अग्रवालो का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए माहेश्वरी महासभा के साथ ही अग्रवाल महासभा का भी थोड़ा बहुत कार्य मैं जानता हूँ। इन दोनों सभाओं के सम्बन्ध मे मैं कह सकता हूँ कि न तो इन्होने अपने जीवन मे भिन्नता को बढ़ाने का उद्योग किया और न भारत के राष्ट्रीय आन्दोलनों मे ये बाधक ही हुई हैं। यदि माहेश्वरी महासभा ने अपने बिछुड़े हुए कोलवाल, गुजराती माहेश्वरी बन्धुओ को अपनाने का प्रयत्न किया है तो अग्रवाल महासभा ने अपना 'मारवाडी अग्रवाल महासभा' का प्रथम शब्द 'मारवाड़ी' निकालकर उसे सभी प्रान्तो के अग्रवाल बन्धुओ की सभा बना दी है। फिर समूचे राष्ट्र-हित के कार्यों में भी जिन माहेश्वरी या

अग्रवाल बन्धुओ ने भाग लिया है उनमे हम देखते हैं कि दोनों महासभाओ के कार्यकर्त्ता ही अत्यधिक सख्याओं में हैं। यदि मुझे यह विश्वास न होता कि माहेश्वरी महासभा माहेश्वरी जाति की सर्वांगपूर्ण उन्नति के साथ ही भारत की राष्ट्रीय उन्नति में भी सहायता पहुँचा रही है, तो मेरा इस सभा से सम्बन्ध रखना असम्भव था। जिस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय उन्नति के लिए राष्ट्रो की उन्नति आवश्यक है, उसी प्रकार राष्ट्रीय उन्नति के लिए पृथक-पृथक जाति की, क्योंकि इससे कार्य बँट जाता है और बँटा हुआ कार्य शीघ्र एवं सरलता से किया जा सकता है। भारत मे जहाँ जातियो की संख्या इतनी अधिक हैं, वहाँ यदि पृथक् पृथक् जातियां राष्ट्रोन्नति के लक्ष्य को सामने रख अपनी अपनी जातियो को उन्नत करने का प्रयत्न करें तो यह कार्य राष्ट्र के लिए अहितकर न होकर हितकर ही होगा। हाँ एक शर्त अवश्य है कि इस कार्य मे अन्य जातियों से द्वेष, द्वेष के कारण साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिकता के कारण आपसी सघर्ष की उत्पत्ति न हो जावे।"

पीड़ितो को सहायता देने के कार्य यद्यपि यो तो वे नित्य प्रति ही करते रहते है, तथापि जबलपुर के सन् १९२९ और सन् १९३७ के दो हिन्दू-मुस्लिम दंगों के अवसर पर तथा सन् १९२२ मे जबलपुर के भीषण प्लेग, सन् १९२६ की नर्मदा की महान् बाढ़ और सन् १९२८ के जबलपुर के अकाल के समय, उनके इस क्षेत्र के विशिष्ट कार्य हैं।

राजनैतिक और साहित्यिक उनके कार्य के मुख्य, तथा समाज और पीड़ितो की सहायता उनके कार्य के गौण, क्षेत्र रहे हैं।

अन्तिम दो कार्यों के सम्बन्ध मे तो हमे अधिक और कुछ नहीं लिखना है, पर उनके प्रधान कार्य क्षेत्रो की कुछ आलोचनात्मक चर्चा के विना सिंहावलोकन का यह अध्याय अधूरा रह जायगा।

राजनैतिक कार्य

गोविन्ददास जी ने राजनैतिक क्षेत्र मे जो कार्य किया, जो कष्ट सहा, जो त्याग किये, उसका ब्यौरेवार वर्णन ऊपर आ चुका है। यहाँ प्रश्न उसकी थोड़ी सी आलोचना का है।

महात्मा गान्धी के नेतृत्व ग्रहण करने के पश्चात् इस देश के कोने कोने से नेता और कार्य-कर्त्ता निकले, उनमें कुछ ऐसे हैं जिनका नाम अधिक प्रसिद्ध हुआ। महाकोशल में गोविन्ददास जी उन्ही व्यक्तियो में हैं। अपने कुटुंब की सारी परपराओ की अवहेलना कर वे इस क्षेत्र मे कूदे। उन्होंने अपना तन, मन और धन तीनो ही इस क्षेत्र के भेंट कर दिये। उन्होने इस कार्य में अपना सारा समय दिया, सारी शक्ति लगायी। 'लोकेषणा' जो मनुष्य स्वभाव की अन्तिम कमजोरी है, उसे छोड़ कर उनकी इस क्षेत्र में अन्य कोई स्वार्थ था, या है, इसे शायद उनके शत्रु भी नहीं कह सकते। वरन यह क्षेत्र हर दृष्टि से उनके सारे स्वार्थों के विरुद्ध था। यद्यपि उनके पिता जी के शाही खर्चों मे उनके घर की बहुत सपत्ति नष्ट हुई तथापि सन् १९२० में यदि गोविन्ददास जी राजनीति में न जाकर अपना घर देखते तो उनके घर की आज जो दशा हो गयी है, वह कभी न होने पाती।

गोविन्ददास जी में बुद्धि थी, परिश्रम था, चरित्र था। वे न तो दुश्चरित्र थे और न उनमें कोई ऐसा व्यसन था, जिससे उनके द्वारा सपत्ति को कोई हानि पहुॅचती। यद्यपि उन्हें व्यवसाय की शिक्षा न मिली थी, और इस दिशा मे उन्हें कुछ अनुभव भी न था, इसलिए उनसे यह आशा न की जा सकती थी कि वे कोई बहुत बड़ी सपत्ति का उपार्जन करेंगे, परन्तु उसकी रक्षा करने की क्षमता वे अवश्य रखते थे। वे राजनीति मे आने के कारण अपना घर-द्वार न देख सके, इतना ही नही, इस क्षेत्र के सिद्धान्तो के कारण उन्होने अपने लाखों रुपयो की हानि की। ग्लैन्डर्स अरबथ नाट एन्ड कम्पनी की एजेन्सी को छोड़ने से करीब एक लाख रुपया सालाना की हानि के सिवा, चुनावों में, 'लोकमत' पत्र में, तथा अन्य इसी प्रकार के अनेक कार्यों में उनके हज़ारों नही, लाखो ही खर्च हुए। उन्होने इस क्षेत्र में मानसिक कष्ट भी बहुत उठाया। घर के कलह के कारण, अपनी माता के दुःख के कारण, अनेक बार वे तिलमिला तक उठते थे। शारीरिक कष्ट भी उन्होने कम नही भोगा। वैशाख-जेठ की तवा सी तपती पृथ्वी पर और झुलसाने वाली लू में वे मीलो पैदल चले। तीन तीन बार जेल गये। वहाँ बीमार रहे। इस प्रकार यह क्षेत्र उनके धन, मन और तन तीनो ही स्वार्थों के विरुद्ध रहा।

फिर भी उन्होंने इस क्षेत्र का सारा कार्य ईमानदारी, पूरी पूरी ईमानदारी के साथ किया। जिस दिन से उन्होने कांग्रेस का साथ दिया, बराबर दिया। इन अठारह वर्षों में एक बार भी उन्होंने कांग्रेस को धोखा नहीं दिया। कभी भी उन्होने कांग्रेस का विरोध नहीं किया। सन् १९२६ में जब प० मदनमोहन मालवीय तथा

लाला लाजपतराय के सदृश अखिल भारतीय नेता, और पं० रवि-शकर शुक्ल के सदृश महाकोशल के नेता, कांग्रेस का विरोध करने पर कमर कसे हुए थे, उस समय भी गोविन्ददास जी तो कांग्रेस पर ही अपना तन, मन और धन न्योछावर कर रहे थे।

उन्हें अपने क्षेत्र में सफलता भी मिली। वे महाकोशल प्रान्त के सर्वमान्य नेता सिद्ध हुए। प्रान्त ने एक सिरे से दूसरे सिरे तक उनका जय-घोष किया, उनका आदर किया, उनसे प्रेम किया, उनकी आज्ञा मानी। एक भी ऐसा आन्दोलन नही, जो उनके नेतृत्व में महाकोशल मे सफल न हुआ हो। एक भी ऐसा चुनाव नही, जिसे वे हार गये हो। फिर कौसिल आफ स्टेट और असेंबली में उन्होंने अपने कार्य की अच्छी धाक जमाई। आफ्रिका के उपनि-वेशों तक मे उनका अच्छा प्रभाव पड़ा।

इतने पर भी प्रश्न यह है कि राजनैतिक क्षेत्र में क्या उनका पूर्णोत्कर्ष हुआ? वे बड़े हैं, पर क्या इतने बड़े हैं जितना उन्हें होना चाहिए था। नही। इसके कारण हैं।

महाकोशल बहुत छोटा प्रान्त है। वह बगाल, बंबई, मद्रास या सयुक्त प्रान्त के सदृश भारतवर्ष की राजनीति को प्रभावित नही कर सकता।

महाकोशल में हिन्दी या अंग्रेजी का कोई ऐसा दैनिक पत्र नहीं, जो महाकोशल के कार्यों को देश के सामने समुचित रूप से रख सके।

गोविन्ददास जी पढ़े-लिखे हैं, विद्वान हैं, पर दुर्भाग्य से आक्स-

फोर्ड या कॅम्ब्रिज, अथवा किसी भारतीय विश्व विद्यालय की उनके पास डिगरी नही है। महात्मा गान्धी ने बार बार कहा है कि इन डिगरियो का ज़रा भी महत्त्व नही, पर उनकी इस तरह की बातो को मानता कौन है ?

गोविन्ददास जी में अपने उत्कर्ष के लिए लड़ने की प्रवृत्ति नहीं, और न खुशामद कराने की आदत है। कुछ अपनो से वड़ों से लड़-कर, उन्हे अपने योग्य स्थान देने के लिए बाध्य करते हैं, कुछ अपनों से वड़ो की खुशामद करके अपने योग्य स्थान को प्राप्त करते हैं।

गोविन्ददास जी अब धनवान भी नही रहे। जिस क्षेत्र में कार्य करने के कारण उन्होने अपने को बर्बाद किया उस क्षेत्र मे धन न होना उनके लिए गौरव की बात मानी जानी चाहिए थी, पर बात कदाचित इसके विपरीत है।

गोविन्ददास जी यद्यपि अपने कुटुम्बियो से, और खास कर अपने पिता से, अपने सिद्धान्तो के कारण सदा लड़ते रहे, यहाँ तक कि अन्त मे उन्होने सपत्ति मे त्याग-पत्र देकर अपना घर छोड़ दिया तथापि उनके पिता के सांपत्तिक मामलो के संबन्ध मे की हुई कार्रवाइयो की ज़िम्मेदारी गोविन्ददास जी पर लादी जाती है। इस विषय मे भी 'पानी से खून गाढ़ा है' इसी पर विश्वास किया जाता है।

उनके पूर्णोत्कर्ष न होने में दो दोष उनके और माने जाते हैं। पहला यह कि वे अपने प्रान्त मे कोई स्थायी और सुसंघटित संघटन न कर सके और दूसरा यह कि उन्होने दूसरो को आगे बढ़ाने मे अपनी शक्तियाँ लगायीं, जिसका फल यह हुआ कि वे पीछे घसीटे

गये और उनकी सर्वमान्यता तक को धक्का पहुँचा। पहली बात कुछ अंशों में सत्य है, यद्यपि इस प्रान्त का जैसा वायुमण्डल है, उसे देखते हुए यहाँ स्थायी और सुसघटित संघटन होना यदि असम्भव नही तो उसके नीचे की सीढ़ी अवश्य थी। परन्तु दूसरी बात सर्वथा भ्रमपूर्ण है। यह बात गोविन्ददास जी और द्वारका प्रसाद जी मिश्र की मैत्री के कारण कही जाती है। गोविन्ददास जी ने मिश्र जी के लिए जो कुछ किया वह तो सबको दिखता है, परन्तु मिश्र जी ने उनके लिए क्या क्या किया यह बहुत थोड़े लोग जानते हैं। वे वर्षों अपने घर-द्वार को छोड़ गोविन्ददास जी के साथ रहे। गोविन्ददास जी के मानसिक उत्कर्ष मे मिश्र जी का बहुत बड़ा हाथ है। इनकी देश-सेवाओ में उनका बहुत बड़ा भाग है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मिश्र जी के सदृश सच्चा, ईमानदार, बुद्धिमान और अपना सब कुछ बलिदान कर देने वाला मित्र गोविन्ददास जी को मिलना कठिन ही नही, असम्भव था। एक समय की बात है, जबलपुर में गोविन्ददास जी और मिश्र जी एक जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जबलपुर के एक बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति ने बात ही बात में गोविन्ददास जी से कहा—"आपसे तो बात करना ही फिजूल है, जितना पानी मिश्र जी पिलायेंगे आप तो उतना ही पियेंगे।" थोड़ी देर बाद ही वे व्यक्ति मिश्र जी से बोले—"आपसे क्या कहा जाय। आप तो गोविन्ददास जी के पिछ-लगे ठहरे।" गोविन्ददास जी और मिश्र जी की मित्रता से एक दूसरे को लाभ पहुँचा है, प्रान्त को लाभ पहुँचा है, किसी को भी हानि नही। इसीलिए इस ज़माने में जब किसी की मैत्री १८ महीने चलना कठिन होता है, तब यह

मैत्री १८ वर्षों से एक सी चली आ रही है, और भगवान इसे इसी प्रकार चलाता रहे यही, दोनो के, और प्रान्त के लाभ के लिए उस जगदाधार से प्रार्थना है।

पूर्णोत्कर्ष के अतिरिक्त गोविन्ददास जी के राजनैतिक क्षेत्रों के कार्यों पर एक प्रश्न और उठता है। जो कार्य उन्होंने किया उसमें स्थायी महत्त्व का कितना कार्य है? राजनैतिक क्षेत्र में दो प्रकार के कार्यकर्त्ता कार्य करते हैं—एक वे जो किसी आन्दोलन को जन्म देते हैं—जैसे महात्मा गान्धी। उनका नाम संसार के इतिहास में सदा अजर-अमर रहता है। दूसरे होते हैं उनके अनुयायी, जिनका अपने समय मे तो बड़ा बोलबाला रहता है, परन्तु फिर उनके नामोनिशान का भी पता नहीं लगता। देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में हमें नीव के पत्थर बनने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, इसे तो प्रत्येक देश-भक्त व्यक्ति को मानना होगा, और इस दृष्टि से गोविन्ददास जी का भी राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करना उपयुक्त है। फिर उन्होने तो इस सेवा-पथ के अपने कुछ दार्शनिक सिद्धान्त भी बना लिये हैं। परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में देश के लिए सर्वोत्सर्ग करने का समय तीसों दिन नहीं रहता। गोविन्ददास जी का असहयोग आन्दोलन मे सम्मिलित होना, सत्याग्रह में जेल जाना, ऐसे अवसरो पर अपना सर्वोत्सर्ग कर देना, और उसके लिए कोई भी फल न पाकर नीव के पत्थर हो जाने की बात, समझी जा सकती है, पर रोजमर्रा की गन्दी राजनीति मे पड़े रहना नही।

एक प्रसंग की बात है। जबलपुर म्युनिसपैल्टी का चुनाव हो रहा था। हनुमान ताल वार्ड से उस समय के जबलपुर

म्युनिस्पल कमेटी के प्रेसीडेन्ट बाबू राधिका प्रसाद वर्मा खड़े थे और उनके विरोध मे कांग्रेस की ओर से पं० देवी प्रसाद शुक्ल। बड़ी कड़ी लडाई थी। एक एक वोट पर हार-जीत मुनस्सर थी। प्रातः काल के वोटिंग के बाद दोपहर की छुट्टी में कौन कौन वोट दे गये हैं, और कौन कौन बाकी हैं, इसकी गिनती हुई तथा बाकी के वोटरो की लिस्ट बनी। दो बजे से फिर वोटिंग शुरू हुआ। वोटिंग होते होते चार बजे के करीब पॉच-सात वोटर और रह गये। उनमें से एक वोटर था जो रहता हनुमान ताल पर था, पर उसकी मनहारी की दूकान जवाहरगज में थी। इस वोटर को बुलाने के बहुत प्रयत्न हुए, आखिर जब यह नही आया तब सेठ गोविन्ददास जी अपनी मोटर में बैठ इसे लेने चले। उसकी दूकान पर उसे छोड़ और कोई न था तथा दूकान बन्द कर वह जाने को तैयार न था। उसने गोविन्ददास जी से साफ कहा—"मैं न तो दूकान बन्द करूँगा और न किसी ऐरे-ग़ैर आदमी के भरोसे अपनी दूकान छोड़ कर जाऊँगा। हाँ, यदि मेरे वोट देकर आने तक आप मेरी दूकान पर बैठें तो मैं जाने को तैयार हूँ।" गोविन्ददास जी उसकी दूकान की रखवाली के लिए बैठे और वह उनकी मोटर में वोट देने गया। इस प्रकार के एक नहीं, न जाने कितने काम गोविन्ददास जी को सदा ही करने पड़ते हैं।

उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ घटा दी हैं। उन्हें अधिक धन भी नहीं चाहिए। इसी प्रकार की राजनीति के लिए उन्हें धन कमाने का प्रयास करना पड़ता है। वह धन किसी भूखे की क्षुधा तृप्त करने में, किसी नंगे को वस्त्र देने में, किसी रोगी की औषधि

में, ख़र्च हो तो दूसरी बात है, पर न जाने कितने राजनैतिक मुफ्तखोरे उसे खाते हैं। चुनावों की दौड़-धूप मे, मोटरो मे, न जाने कितना पैटरोल पानी के समान बहता है।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए गोविन्ददास जी का फाँसी पर चढ़ना तथा गोली खाना, और इतने पर भी नीव के पत्थर ही बने रहना, समझ में आता है, पर इस गन्दी दल-बन्दी के कामो में तो नही।

कई व्यक्ति ऐसे हैं जो इन कामों से अच्छा कोई अन्य काम कर ही नहीं सकते, पर गोविन्ददास जी तो इससे कहीं महान और स्थायी काम करने की क्षमता रखते हैं। यह है उनका साहित्यिक कार्य और उनके इसी कार्य पर अब विचार करना है।

साहित्यिक कार्य

गोविन्ददास जी की साहित्य-सेवा में 'शारदा-भवन पुस्तकालय', 'राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर', 'श्री शारदा', 'शारदा-पुस्तकमाला', और दैनिक 'लोकमत' का प्रकाशन तो स्थान रखते हैं, परन्तु ये स्थायी महत्त्व की चीज़ें नही थीं। स्थायी महत्त्व की चीज़ उनकी रचनाएँ हैं। उन्होने बहुत छोटी अवस्था से साहित्य-रचना आरम्भ की थी। पहले उन्होने छोटे छोटे कुछ उपन्यास लिखे, फिर कविताएँ और फिर नाटक। उन्होंने अपने 'तीन नाटक' ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि अपनी बचपन की रचनाओ को वे 'खिलौना' समझते हैं। बचपन की रचनाएँ सचमुच खिलौना ही होती हैं, परन्तु

जिस प्रकार खिलौनो से खेलते खेलते बच्चों के हृदय में न जाने कितने नये नये विचारों का प्रवेश और प्रादुर्भाव होता है, तथा ये विचार जिस प्रकार आगे चलकर उनके मानसिक विकास मे बीज का काम देते हैं, वही बात लेखक की आरम्भिक रचनाओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

गोविन्ददास जी के बचपन मे लिखे हुए उपन्यास और कविताओ को यदि छोड दिया जाय तो उनका पहला ग्रन्थ 'विश्व प्रेम' नामक नाटक है, जो उन्होने सन् १९१७ में लिखा। इस नाटक के पढ़ने से ही पता लग जाता है कि उनमे नाटक लिखने की स्वाभाविक क्षमता थी। इसके बाद सन् १९३० तक वे कुछ न लिख सके। सन् १९३० मे जेल में उन्होंने फिर पढ़ना लिखना आरम्भ किया और सन् १९३४ तक तीन बार के जेल-जीवन में उन्होंने तेरह नाटक और लिख डाले। उनके इन चौदह नाटको में 'कर्तव्य' 'पौराणिक', 'हर्ष,' 'कुलीनता' और 'विश्वासघात' ऐतिहासिक, 'प्रकाश,' 'सेवा-पथ,' 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य,' 'दलित कुसुम,' 'स्पर्द्धा,' 'बड़ा पापी कौन,' 'ईर्षा,' और 'विश्व प्रेम' सामाजिक एवं 'विकास' तथा 'नवरस' दार्शनिक नाटक हैं।

इनमें से 'कर्तव्य,' 'हर्ष,' और 'प्रकाश' पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। 'स्पर्द्धा' 'सरस्वती' में और 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' 'हंस' में प्रकाशित हुए थे। 'सिद्धान्त स्वातन्त्र्य' को प्रकाशित करने के कारण तो उस पत्र से जमानत तक माँगी गयी थी और बहुत समय तक वह बन्द भी रहा। इसके बाद 'स्पर्द्धा' और 'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए। 'विश्व प्रेम' सन् १९१७

में ही बड़ी सफलता पूर्वक खेला गया था। 'कुलीनता' का 'धुँआँधार' के नाम से और 'दलित कुसुम' के फिल्म बने हैं। नाटकों के सिवा नाट्य साहित्य और कला पर गोविन्ददास जी ने एक गवेषणापूर्ण निबन्ध भी लिखा है। यह उनके 'तीन नाटक' के प्राक्कथन के रूप मे 'तीन नाटक' के साथ तथा 'नाट्यकला मीमांसा' के नाम से पृथक् पुस्तिका में प्रकाशित हुआ है।

कुछ काल पहले नाटक और कविता में बड़ा निकट का संबन्ध माना जाता था। इसका कारण यह था कि नाटको में कविता होना अनिवार्य था, परन्तु आज परिस्थिति बिलकुल भिन्न हो गई है। नाटककार का पद्य मे लिखने वाला कवि होना कोई आवश्यक बात नहीं हैं। पश्चिम के आधुनिक सफल नाटककारो में बहुत कम इस प्रकार के कवि हैं। यथार्थ में नाटककार का आलोचक होना आवश्यक है। आलोचना के लिए अध्ययन तथा समाज का बारीक ज्ञान होना ज़रूरी है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हर एक आलोचक नाटककार हो सकता है। आलोचक होते हुए भी नाटक लिखने मे जो अन्य बातें आवश्यक हैं, वे जब तक किसी व्यक्ति मे न हो तब तक वह नाटककार नही हो सकता। गोविन्ददास जी पद्य लिखने वाले कोई सुकवि नहीं हैं, वे नाटककार हैं। उनके अध्ययन, समाज का बारीकी से निरीक्षण, प्रौढ़ विचार और कल्पना की सहायता के कारण उनके नाटक-कला के बडे अच्छे नमूने हैं।

कौन सी श्रेष्ठ कला है, और उस कला-जन्य वस्तु में कौन सी श्रेष्ठ वस्तु है, इस विषय में गोविन्ददास जी ने फ्रान्स के रोमारोलाँ

और इगलैंड के जान रस्किन के दो बड़े सुन्दर उद्धरण अपने 'तीन नाटक' की भूमिका मे दिये हैं। कला की दृष्टि से जाँच करने पर गोविन्ददास जी की कला की सृष्टि इन दोनो उद्धरणों, के अनुरूप ही हुई है और वह कैसी है यह जानने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि वे दोनो उद्धरण ही यहाँ उद्धृत कर दिये जाँय।

रोमारोलाँ ने श्रेष्ठ कला के सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'ज्यांक्रिस्टोफीन' में एक स्थान पर लिखा है—

"कला के लिए कला! क्या ही अच्छा धर्म है। परन्तु यह धर्म तो बलवानो का है। कला! जीवन को वैसे ही जकड़-कर पकड़ना जैसे गरुड़ अपने शिकार को पकड़ता है, उसे लेकर ऊपर उठना, गगन-मण्डल की अखण्ड शान्ति में उसे लेकर उड़ जाना। इसके लिए तुम्हें सुदृढ़ पजो, महान पंखो और बलशाली हृदय की आवश्यकता है। परन्तु तुम हो क्या? तुम हो मकानो में फुदकने वाली मामूली चिड़िया, जिसे ज्योंही माँस का नन्हाँ सा टुकड़ा मिल जाता है, त्योंही उसपर इधर-उधर चोंच मारकर, अपनी-सी दूसरी चिड़ियों से लड़ते हुए चें-चें करती है। कला के लिए कला! रे तुच्छ मनुष्य, कला वह मार्ग नहीं है जिस पर अपने को पथिक समझने वाले सभी चल सकें। इसपर कहा जायगा कि क्यों नही, कला में मज़ा है, उसमे सबसे अधिक मस्ती है। परन्तु याद रक्खो, यह वह आनन्द है जो लगातार कड़े से कड़ा युद्ध करने पर ही मिलता है, यह वह विजय-माला है, जिसके पहनने का सौभाग्य बलशाली के हृदय को ही प्राप्त होता है। कला का अर्थ है—नियन्त्रित, सयमित, मर्यादित

जीवन। कला जीवन का सम्राट है। सीज़र के समान सम्राट होने के लिए सीज़र की सी बलवती आत्मा चाहिए। परन्तु तुम सम्राट होना तो दूर रहा, साधारण राजाओं की छायामात्र हो। तुम साधारण अभिनेता हो, परन्तु इतने कुशल अभिनेता भी नहीं कि अपने अभिनय में अपने को भी भूल सको। जिस प्रकार ये अभिनेता अपनी शारीरिक त्रुटियों तथा दोषों के द्वारा पैसा पैदा करते हैं, उसी प्रकार तुम भी अपनी मानसिक तथा आत्मिक त्रुटियों से लाभ उठाते हो। तुम अपनी तथा जनता की कुरूपता का उपयोग कर साहित्य गढ़ते हो। तुम जान बूझकर तत्परता से अपने देशवासियों की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बीमारियों, उनकी कायर प्रयत्न-हीनता, उनकी शारीरिक सुख की लिप्साओं, उनकी कामुक मनो-वृत्तियों, उनकी काल्पनिक मनुष्य-हित-कामनाओं को बढ़ाकर अपना स्वार्थ साधते हो। तुम उन सभी प्रवृत्तियों को, जो इच्छा शक्ति को कमज़ोर करती हैं, जो कर्मण्यता को खोखला करती हैं, उत्तेजना देते हो। तुम अपने उपदेशों से अपने राष्ट्र के मन को मुर्दा करते हो। तुम्हारे साहित्य के, तुम्हारे उपदेश के, मूल में ही मृत्यु है। तुम जानते हो, परन्तु तुम स्वीकार न करोगे। परन्तु, मैं तुमसे कहूँगा कि जहाँ मृत्यु है, वहाँ कला नहीं है। कला तो जीवन का स्रोत है। परन्तु, तुम्हारे सबसे अधिक ईमानदार समझे जानेवाले लेखक तक इतने कायर हैं कि उनकी आँखों की पट्टी खुल जाने पर भी वे न देख सकने का बहाना करते हैं। वे धृष्टतापूर्वक कहते हैं—हाँ, कला के लिए कला का सिद्धान्त खतरनाक है, ज़हरीला है, परन्तु

उसमें बुद्धि है, प्रतिभा है। वाह! कितना विचित्र तर्क है—मानों किसी गुण्डे को सजा सुनाते हुए न्यायधीश कहे कि—यह पापी अवश्य है, परन्तु इसमें बड़ी बुद्धि है, बड़ी प्रतिभा है।"

श्रेष्ठ कला की वस्तुओं में कौन महान है इस सम्बन्ध में जान रस्किन लिखते हैं—

"अब मैं उत्तम कलाजन्य वस्तु की व्याख्या इतने व्यापक रूप से करना चाहता हूँ कि उसके अन्तर्गत उसके समस्त विभाग और उद्देश आ जावें। इसीलिए मैं यह नहीं- कहता कि वही कला जन्य वस्तु सर्वोत्तम है जो सबसे अधिक आनन्द देवे, क्योकि किसी वस्तु का उद्देश कदाचित् शिक्षा देना हो और आनन्द देना न हो। मैं यह भी नही कहता कि कलाजन्य वही वस्तु सर्वश्रेष्ठ है जो सबसे अधिक शिक्षा देवे, क्योकि किसी वस्तु का उद्देश कदाचित आनन्द देना ही हो और शिक्षा देना न हो। मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि कलाजन्य वही वस्तु सबसे अच्छी है, जिसमें सबसे अधिक अनुकरण किया गया हो, क्योंकि कदाचित् कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उद्देश नवीनता का निर्माण करना हो और अनुकरण करना न हो। और मैं यह भी न कहूँगा कि कलाजन्य वही वस्तु सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें सबसे अधिक नवीनता हो, क्योकि कदाचित् कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उद्देश अनुकरण करना हो और नवीनता का निर्माण नहीं। मैं तो उस वस्तु को कला की सबसे महान् वस्तु मानता हूँ जो किसी भी मार्ग द्वारा हृदय मे सबसे अधिक और सबसे महान् विचारो को उत्पन्न कर सके।"

इस कसौटी पर खरे उतरने के लिए नाटको में जिन गुणों की

आवश्यकता गोविन्ददास जी समझते हैं वे भी उन्होने अपने 'तीन नाटक' की भूमिका मे दिये हैं। उन्होंने लिखा है—

"नाटक मे सर्वप्रथम किसी 'विचार' (Idea) की आवश्यकता है। विचार का अर्थ यहाँ साधारण विचार न होकर जीवन की कोई समस्या है। विचार की उत्पत्ति के पश्चात् उस विचार के विकास के लिए 'संघर्ष' (Conflict) अनिवार्य है। संघर्ष वाह्य और आन्तरिक दोनो ही प्रकार का आवश्यक है। वाह्य संघर्ष किसी एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति का अथवा किसी एक व्वक्ति के साथ समाज या राष्ट्र का अथवा पुरुष वर्ग के साथ स्त्री वर्ग का हो सकता है। आन्तरिक सघर्ष एक ही व्यक्ति के हृदय का संघर्ष है। इसे वाह्य संघर्ष से अधिक महत्व है। यह सघर्ष एक भाव के साथ दूसरे भाव तक का होता है और प्रतिक्षण इसमें परिवर्तन होता है। नाटक में, यही मनोविज्ञान को अपना कार्य करने का अवसर मिलता है। इस विचार और संघर्ष की संबद्धता और मनोरंजकता के लिए 'कथा' (Plot) की सृष्टि होती है। कथा बिना पात्रो के नहीं हो सकती, अतः पात्रों का प्रादुर्भाव तथा उनका चरित्र-चित्रण होता है, और चूँकि नाटक की कथा लेखक द्वारा नहीं कही जा सकती, इसलिए पात्रो की कृति और कथोपकथन ही उस कथा के कथन के साधन हैं।

"जिस नाटक में जितना महान् विचार होगा, जितना तीव्र सघर्ष होगा, जितनी संगठित एवं मनोरंजक कथा होगी, जितना विशद चरित्र-चित्रण होगा और जितनी स्वाभाविक कृति एवं कथोपकथन होगे, वह उतना ही उत्तम तथा सफल होगा।

"इस उत्तमता और सफलता के लिए इन सब अगों की, एक दूसरे के सग मे इस प्रकार की सबद्धता आवश्यक है जिससे सारे नाटक पर 'एकता' (Universality) के वायुमण्डल की स्थापना हो सके।"

गोविन्ददास जी के प्राय: हर नाटक मे कोई न कोई महान् विचार है। 'विश्वप्रेम' मे विश्वप्रेम, 'कर्तव्य' में कर्तव्य, 'स्पर्धा', में स्पर्धा, 'सेवापथ' मे सेवापथ, 'कुलीनता' मे कुलीनता, 'विकास' मे विकास, 'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य' में सिद्धान्त स्वातन्त्र्य, 'विश्वासघात' मे विश्वासघात, 'ईर्षा' में ईर्षा, आरम्भ से अन्त तक देखने को मिलते हैं। उनके नाटको मे पात्रों को महत्व नही है, विचार को महत्व है और उस विचार के परिपाक के लिए ही पात्रों की सृष्टि होती है। इतने पर भी ये पात्र जीते जागते पात्र होते हैं, मृत नही। विचार का विकास पात्रो के सघर्ष से होता है। यह सघर्ष पात्रों में एक दूसरे से सर्वथा विरोधात्मक भावनाओ के कारण तीव्र हो जाता है। और मुख्यत. यह सघर्ष ही पात्रों को जीता जागता बनाये रखता है। फिर उनके नाटको में पात्रो की संख्या बहुत कम रहने के कारण उनके चरित्रों का स्पष्ट और पूर्ण विकास होता है। हर नाटक में कोई न कोई स्थायी समस्या, पात्रो का चरित्रचित्रण, भाषा का ओज तथा बहाव, कथोपकथन, कथा की तीव्र एवं विशद गति और अत्यधिक स्वाभाविकता इन नाटकों की विशेषताएँ हैं। स्वाभाविकता का तो बहुत अधिक ध्यान रखा गया है। किसी नाटक में भी स्वगत कथन नहीं; पात्रो की भाषा पात्रो के अनुरूप है। जहाँ राम, कृष्ण आदि के संभाषणो में फारसी और अरबी

शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया वहाँ मुस्लिम पात्रों के कथोपकथन में संस्कृत शब्दो का भी वहिष्कार है।

गोविन्ददास जी के पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक यद्यपि उस काल का चित्र चित्रित करते हैं जिस पौराणिक अथवा ऐतिहासिक काल का वे प्रदर्शन कराते हैं, तथापि उनमें ऐसी समस्याओं का दिग्दर्शन होता है जो मनुष्य समाज की कभी समाप्त न होनेवाली समस्याएँ हैं। फिर उन समस्याओ की व्याख्या सर्वथा नये ढंग से होती है, यही वात उनके सामाजिक नाटको मे भी है। उनके सामाजिक नाटक यद्यपि आधुनिक समाज के जीते जागते चित्र हैं तथापि उनमें भी किसी न किसी स्थायी समस्या की व्याख्या मिलती है। उनके सामाजिक नाटकों मे भारत के वर्तमान उच्च कोटि के शहराती समाज का चित्रण है, जिसका उनको व्यक्तिगत अनुभव है। उनमें मिनिस्टर, जमीदार, व्यापारी, वकील, डाक्टर, सपादक, कांग्रेस, हिन्दू सभा, मुस्लिम लीग आदि के अनुयायी इत्यादि के चरित्रो का चित्रण है। देहाती समाज और शहराती समाज के निर्धन वर्ग को वे अपने नाटको मे चित्रित नही कर सके हैं क्योकि समाज के इस पहलू का उन्हे कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है। उनके अनेक पात्रो के चरित्र-चित्रण पढ़ते पढ़ते तो यहाँ तक शंका होने लगती है कि अमुक व्यक्तिको सामने रखकर ही कदाचित उन्होंने अपने अमुक पात्र का चित्रण किया है। कई पात्रो मे स्वयं उनका भी आभास पाया जाता है और नाटक के अनेक स्थलों पर उनके ही घर और उनके ही आसपास घटित होनेवाली घटनाओ की छाया मिलती है।

'विकास' और 'नवरस' गोविन्ददास जी के ऐसे नाटक हैं जो न पौराणिक कहे जा सकते हैं, न ऐतिहासिक और न सामाजिक। इसीलिए उन्हें 'दार्शनिक' नाटक लिखा गया है।

गोविन्ददास जी के नाटकों का मिलान हिन्दी के अन्य नाटककारों के नाटकों से नहीं किया जा सकता। पहले तो हिन्दी में नाटक ही इने-गिने हैं, और जो हैं वे गोविन्ददास जी के 'स्कूल' के न होकर 'रोमान्टिक' स्कूल के हैं। गोविन्ददास जी इबसन के अनुयायी हैं, अन्य नाटककार शेक्सपियर के। हिन्दी क्या अन्य भारतीय भाषाओं मे भी अभी गोविन्ददास जी के 'स्कूल' के नाटक नही लिखे गये हैं, और लिखे भी गये होंगे तो बहुत कम। गोविन्ददास जी के नाटको का इबसन, बर्नाड शा आदि पश्चिम के किसी भी सफल नाटककार से सफलता-पूर्वक मिलान किया जा सकता है। इतने पर भी यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि रंग मच पर लाने के लिए इन नाटको मे काफी परिवर्तन आवश्यक है। बात यह है कि योरप मे छपने के पूर्व नाटक रंच मंच पर खेल लिये जाते हैं। भारत मे हिन्दी का कोई रंच मच ही नही। इसके सिवा गोविन्ददास जी के नाटक गभीर साहित्य के अंग हैं, सरल साहित्य के नही। जहाँ गोविन्ददास जी गभीर भावो को व्यक्त करने में सफल हुए हैं, वहाँ उन्हे हास्य रस आदि के प्रतिपादन में विफलता ही मिली है।

यद्यपि गोविन्ददास जी के नाटको का हिन्दी में यथेष्ट आदर हुआ है, 'कर्तव्य' नाटक कलकत्ता विश्व-विद्यालय के एम० ए० कोर्स तक में नियुक्त है, फिर भी जैसा आदर होना चाहिए वैसा

नहीं हुआ। इसके कारण हैं। सबसे पहला कारण तो यह है कि आदर प्रचार पर निर्भर है और हिन्दी भाषा के ग्रन्थो का प्रचार ही बड़ी कठिनाई से होता है। दूसरा कारण यह है कि उनके सभी नाटक प्रकाशित नही हुए और जो प्रकाशित हुए हैं उनके प्रचार का कोई उद्योग नहीं किया गया। और तीसरा कारण यह है कि हिन्दी मे आलोचको की भयानक रूप से कमी है। परन्तु जो वस्तु स्थायी महत्व की है, उसके प्रचार मे यदि विलब भी हो जाय, तो इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। गोविन्ददास जी के नाटक क्षणिक महत्व नही रखते। उनमें से अधिकांश मनुष्य जीवन की स्थायी समस्याओ से सम्बन्ध रखते हैं और कभी न कभी इन नाटको का उपयुक्त स्थान उन्हें प्राप्त होकर ही रहेगा। महाकवि भवभूति ने कहा था —

"येनाम के चिदिहनः प्रथयन्त्यवज्ञा।
जानन्तु ते किमपितान् प्रतिनेषयत्न ॥
उत्पत्स्यतेऽस्नि ममकोऽपि समानधर्मा।
कालोह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी ॥"

कई विद्वानो को गोविन्ददास जी के नाटक इतने पसन्द आये हैं कि इनके अँग्रेजी, मराठी और गुजराती अनुवाद का प्रयत्न हो रहा है। पराधीनता के कारण हमे अपनी आँखो की अपेक्षा शायद दूसरे की आँखो से अधिक दिखायी देता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सदृश विभूति को हम तब तक पूर्ण रीति से न पहचान सके जब तक उन्हे 'नोबल' पुरस्कार नहीं मिल गया।

गोविन्ददास जी के नाटकों का अँग्रेजी अनुवाद ही शायद उन्हें उनका समुचित स्थान दिलावेगा।

जिस व्यक्ति ने अपने अढ़ाई वर्ष के जेल जीवन में तेरह नाटक लिख डाले, और वे भी उत्तम कोटि के, वह यदि अपना समय इस कार्य में लगावे तो किसी भी पश्चिमी साहित्यकारों के सदृश जिल्दें की जिल्दें लिख जाने वाला लेखक हो सकता है।

गोविन्ददास जी के मस्तिष्क में नाटकों के लिए न जाने कितनी समस्याएँ, कितनी कथाएँ, कितने चरित्र, कितनी कल्पनाएँ, उठा करती हैं। कभी कभी वे उन्हें नोट भी कर लेते हैं, पर अधिकतर तो इस प्रकार नोट करने का भी उन्हें समय नहीं मिलता। मस्तिष्क के ये भाव उठते और विलीन हो जाते हैं। 'विश्व प्रेम' नाटक के सन् १६१७ में लिखने के बाद बारह वर्ष के पूरे एक युग के पश्चात् उन्होंने लेखनी उठाई थी। १९३४ को ५ वर्ष फिर बीत गये। मालूम नहीं अब फिर कब लेखनी का आह्वान होता है।

उपसंहार

लगभग १३८ वर्ष पहले विक्रमीय सवत् १८५७ की—माघ मास की घोर अधेरी अमावास्या के वाद उषा की लाली फैली थी। उस दिन राजपूताने के रेगिस्तान की चमकती हुई रेत पर जयसलमेर राज्य की सीमा को पार कर एक ऊँटनी तेजी से पूर्व दिशा की ओर जा रही थी। उस पर वैठे हुए सेठ सेवाराम जी ने अपनी महत्वकांक्षा से प्रेरित हो मरुभूमि को छोड़ किसी हरेभरे उपजाऊ स्थान पर बसने और धन कमाने का सकल्प किया था। धन कमाकर अपना उत्कर्ष करना और भगवत्—सेवा सेवाराम जी के जीवन का उद्देश्य था। इसीलिए उन्होंने अपने एक पुत्र का नाम खुशहालचन्द और दूसरे का रामकृष्ण दास रखा था। सेवाराम जी अपने उद्देश्य में कृतकार्य हुए। जो कुछ उन्होने चाहा था वह चरम सीमा को पहुँचा उनके पौत्र राजा गोकुलदास जी के समय। राजा गोकुलदास जी करोड़ पतियो में प्रमुख हुए। धन की दृष्टि से वे अपने समय के सारे भारतवर्ष के बड़े से बड़े आदमियो मे एक, तथा मारवाड़ियों में सबसे बड़े आदमी थे। उन्होने अपने कुटुम्ब की शान-शौकत और ठाठ-बाट को भी राजाओ के सदृश बढ़ाया तथा लाखों रुपये सेवा के कार्य में भी खर्च किये। और उनके पौत्र गोविन्ददास जी ने ?

सेवाराम जी के इस वंशज ने सेवा में अपने को मिटा दिया।

उनके कुटुम्ब के लिए सवत् १८५७ की माघ मास की अमावास्या कालिमा की अन्तिम घड़ी थी। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को उषा की जिस लाली में, सोने के सूर्य के जिस सुनहरे प्रकाश मे, उन्होंने जयसलमेर राज्य को छोड़ा था, उस उषा के प्रकाश ने उनके घर को प्रकाशित कर दिया, सोने के सूर्य ने उनके घर को सोने से भर दिया। जहाँ तक संपत्ति का सम्बन्ध है गोविन्ददास जी के समय फिर से उस घर पर अमानिशा आयी, पर जहाँ तक सेवा का सम्बन्ध है वहाँ तक ? सेवा के सम्बन्ध मे सेवारामजी के घर का गोविन्ददास जी ने पूर्णोत्कर्ष किया है।

समाप्त

परिशिष्ट—१

कौंसिल आफ स्टेट में

सेठ गोविन्ददास जी का कार्य

१९२६

१. सर फीरोज़ सेठना के शासन-सुधार के लिए रायल कमीशन की नियुक्ति पर तरमीम ।

२. मि० के० सी० राय के उद्योग धन्धों संबन्धी प्रस्ताव पर भाषण ।

१९२७

१. करन्सी विल पर दो तरमीमें—रेशो (रुपये का विनिमय दर) और गोल्ड करंसी ।

२. जनरल बजट पर भाषण ।

३. फाइनेंस विल पर भाषण ।

४. धारा सभाओं में हिन्दी में भाषण देने के अधिकार देने पर प्रस्ताव ।

५. जो स्थान भारतीय सरकार के अधिकार में हैं, वहाँ शराब बन्दी के प्रस्ताव पर भाषण ।

६ पोस्टल रेट घटाने पर प्रस्ताव ।

६. थर्ड क्लास का ½ किराया घटाने पर प्रस्ताव ।

७. स्टील प्रोटेक्शन बिल पर भाषण ।

८. क्रिमनल लॉ एमेन्डमेन्ट विल पर भाषण ।

९. इडियन टैरीफ एमेन्डमेन्ट विल पर भाषण ।

१०. इंडियन टैरीफ़ (काटन यार्न एमन्डमैन्ट) बिल पर भाषण।

११. नए उद्योग धन्धे-खोलने के लिए ५० लाख प्रति वर्ष भारतीय सरकार द्वारा देने के लिए प्रस्ताव।

१२. दस वर्ष की अवस्था वाली दूध देने वाली गायों और भैंसों का वध रोकने लिए प्रस्ताव।

१९२८

१. इंडियन फाइनेंस बिल पर सुधार।

(१) नमक कर घटा कर ।।) मन हो।

(२) पोस्टल रेट घटे।

(३) ३५००) रु० तक इनकम टैक्स न लिया जाय।

२. साइमन कमीशन को राय देने के लिए जो कमेटी बनने वाली थी उसके सरकारी प्रस्ताव के विरोध में भाषण।

१९२९

१. रेलवे बजट पर भाषण।

२. मध्यप्रान्त में अकाल पीड़ितों को चरखा देने की मध्यप्रान्तीय सरकार से सिफ़ारिश करने के संबन्ध मे प्रस्ताव।

३. लैन्ड रेवन्यू के तरीके की जाँच करने के लिए सारे भारत में एक कमेटी बनाने के लिए प्रस्ताव।

४. राजद्रोह के मुक़दमो में जूरी ट्रायल के प्रस्ताव पर भाषण।

५. मुसाफिरों को थर्ड क्लास रिटर्न टिकट देने लिए प्रस्ताव।

६. गोरी पल्टन को गोमांस न देने के लिए प्रस्ताव।

७. गोरक्षा के लिए दो बिल।

परिशिष्ट—२

सेठ गोविन्ददास जी द्वारा समस्त संपत्ति का त्याग-पत्र

पूज्य पिता जी,

मैं जिस प्रधान कारण से अपनी समस्त संपत्ति का यह त्याग-पत्र लिख रहा हूँ वह आपका ता० २१ जुलाई का पत्र है। उस पत्र के प्रत्येक वाक्य और शब्द, एवं गत बारह वर्ष के अपने जीवन, और इस जीवन में आपका और मेरा जिस प्रकार का सम्बन्ध रहा है, उस सब पर विचार करने के उपरान्त मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ। आपका पत्र यद्यपि बहुत बड़ा है तथापि उसे मैं इस त्याग-पत्र में अक्षरशः उद्धृत करना उचित समझता हूँ, क्योंकि उसका उत्तर भी मैं इसी त्याग-पत्र के द्वारा ही देना चाहता हूँ।

पूज्य पिता जी का पत्र

चिरंजीव बाबू गोविन्ददास,

आसीस

तुम्हारे जेल से छूट कर आने से मुझे, तुम्हारी माँ और सौ० बींदनी को कितनी खुशी हुई इसे तुम खुद जान सकते हो। सौभाग्यवती बींदनी की सख्त बीमारी के सबब हम सब ही इस वक्त चिन्ता में हैं। भगवान जाने उसकी बीमारी किस तरह अच्छी होती है, पर ऐसी हालत में भी तुम्हारी अजीब हालत है। तुम

आये तो बीमारी में हो और इस बीमारी मे तुम मन्दिर में ठहरे हो और मदिर में ठहर कर सुना है अपने किसानो को इसलिए बुलाया है कि उनसे पूछो कि वसूली मे उनको कोई तकलीफ तो नहीं दी गयी। किसानो की फिक्र जरूर वाजिव है और तुम जानते हो कि पूज्य राजा साहव के स्वर्गवास के वाद मैंने किसानो पर जो कर्ज था उसमें से सोलह लाख रुपया छोडा है। लेकिन कुछ किसान इतने खुदगर्ज़ और मतलवी होते हैं कि रुपया रहते हुए भी नही देते, इसका भी मुझे गये पच्चीस वर्ष का अनुभव है। फिर सौ० वींदनी की इस सख्त बीमारी के वक्त किसानों को इस तरह से बुलाना यह ज्यादती की हद है। ऐसे वक्त भी तुम्हारी इन सब हरकतों के सबव मुझे रज के साथ दिल खोलकर कुछ वातें तुमसे साफ-साफ कह देना ज़रूरी मालूम होता है। तुम इस बात से बुरा न मानना। मेरे और तुम्हारी माँ के इस संसार मे थोड़े ही दिन बाकी है। हम लोग इस ससार से कब चल बसें इसका कोई भरोसा नही। पर हम लोग इतने विरक्त नही हो गये है कि बुढ़ापे में भी अपनी घरू बातों की तरफ ख्याल न कर श्री ठाकुर जी की सेवा में बाकी उम्र बिता दें। हम लोगों की यह मशा थी कि तुम खुद घर को सँभालते और हमारा बुढ़ापे में छुटकारा करते पर तुम घर की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देते। गये दस ग्यारह सालो में जो कुछ तुम करते रहे हो, और उससे जो कुछ नुकसान पहुँचे हैं, उनकी बाबत भी मैं कुछ बातें साफ कह देना चाहता हूँ।

नान-को-आपरेशन के शुरू होते ही तुमने अपना सारा वक्त

राजनैतिक कामों मे लगा दिया, तुम्हे घर का कुछ ख्याल नहीं। तुम्हारा कदम आगे बढ़ता ही चला जा रहा है, तुम्हारी इन हरकतो से मेरी छोटी समझ मे सिवा नुकसान के कुछ फायदा नज़र नहीं आता। तुम्हारी वाह वाह ज़रुर हुई लेकिन वाह वाह करने वालों को इस बात का ख्याल क्यो कर हो सकता है कि इस से तुम्हारे घर को कितना नुकसान पहुँच रहा है। घर ही बिगड गया वो तुम कहाँ के होगे, और तुम्हारे वाह वाह करने वाले साथी क्या तुम्हारा साथ देवेंगे? ये सब तुम्हारे धन के साथी हैं, तुम्हारे पास जब धन न रहेगा तो ये सब तुम्हारा कब साथ देने लगे? शहद जब तक है तभी तक मक्खियाँ भिनभिनाती हैं, खतम हो जाने पर उड़ जाती है, इसका अनुभव तुमको भी होगा और तभी मेरे कहने की सत्यता मालूम होगी।

अब देखो, गये १०-११ सालो के नुकसानो को—

१. तुम्हारा नान-को आपरेशन में शामिल होने व इस वक्त सिविल डिस ओबिडियस आन्दोलन में शामिल होने से जिसके कारण तुम्हे दो दफे जेल में जाना पडा, सरकारी अफसरों की अपने घर पर नाराजी हो गयी, जो मदद हमेशा उनसे मिलती थी वह बन्द हो गयी और आगे भी अफसरों से किसी तरह की मदद और हमदर्दी की उम्मीद नही हो सकती।

२. इतना ही नहीं हुआ कि सरकारी अफ़सरों की मदद न मिले, पर नीचे लिखे नुकसान और हुए, जो तुम कहते हो कि तुम्हारे सिद्धान्तों के आगे नही के बराबर हैं। पर मैं तों उन्हें

बहुत बड़े नुकसान समझता हूँ और साथ ही राजनीति से रोज़गार-धन्धो को नुकसान पहुँचाया जावे इस उसूल के सख्त खिलाफ हूँ—

(क) तुमने सन् १६२१ में कलकत्ते की अपनी दूकान में जो विलायती कपड़े का काम गिलेंडर अरबथनाथ कंपनी सरीखी बड़ी भारी कंपनी के बैनियन शिप की हैसियत से करीब बीस साल से हो रहा था उसे छुड़वा दिया, जिससे करीब एक लाख रुपये साल की आमदनी का नुकसान हुआ। उस वक्त कलकत्ते में किसी ने भी विलायती कपड़े का रोज़गार नही छोड़ा था, बल्कि हमारे छोड़ने पर उसी काम को दूसरे हिन्दुस्तानियो ने ले लिया। हम लोगो को फ़िजूल के लिए नुकसान, और वह भी सालाना के लिए अच्छी आमदनी का नुकसान, उठाना पड़ा।

(ख) सन् १९२१ से तुमने अपने नाम के गाँवों के किसानों पर जो मुकदमें चल रहे थे उन्हें उठा लिया। सन् १९२४ तक तुमने नये मुकदमें भी दायर नहीं किये। नतीजा यह हुआ कि करीब डेढ़ लाख रुपया बेरून म्याद हो गया और किसान सिर जोर हो गये।

(ग) सन् १९२४ से १९२९ तक गनीमत रही पर सन् १९३० के शुरु से ही फिर आफत शुरु हुई। तुम दो साल को जेल तो गये ही, जिससे इस बुढ़ापे में तुम्हारे माँ-बाप कितने बेचैने रहे वह हम लोगों का जी जानता है। पर इतना ही नही हुआ, सन् १९३१ के मार्च में जेल से लौटते ही तुमने किसानों से

ऐसी हमदर्दी बताना शुरू किया कि सन् १९३१ की रबी की फ़सल की वसूली नहीं के बराबर हुई, क्योंकि बिना मुस्तैदी दिखाये वसूली हो ही नहीं सकती और मुस्तैदी दिखाना तो दूर रहा तुमने किसानो को यह कह कर कि मालगुज़ार किसानो के सेवक हैं, किसानो को और सिर जोर बना दिया।

घ) बिना वसूली के घर से जमा सरकारी पटा देने के लिए कहा गया, पर उस पर भी तुम राज़ी न हुए, नतीजा यह हुआ कि जिस कुड़की का सपना भी राजा गोकुलदास के महल में न देखा जा सकता था वह कुड़की हुई और चाँदी की बग्घी और लेन्डोकार कुड़क हुई जिसमें अजहद बदनामी हुई।

(ङ) सन् १९३२ की जनवरी में तुम फिर एक साल को जेल चले गये, और जेल जाते वक्त यह कह गये कि अगर ज़ुर्माना हो तो चाहे कितने ही की जायदाद नीलाम हो जाय, पर वह हर्गिज न पटाया जाय। तुम्हारी नाराज़ी के डर से ज़ुर्माना नहीं पटाया गया और फिर कुड़की हुई। वह तो किसी शुभचिन्तक ने ज़ुर्माना पटा दिया नहीं तो दो हज़ार के ज़ुर्माने मे न जाने कितने की जायदाद नीलाम हो जाती।

(च) सन् १९३२ में जेल जाने के पहले जब तुम चार दिन तक तिलक भूमि पर लगातार बैठे, थे उस समय तुमने अपने गाँवो के एक एक किसान को बुला-कर कहा कि कोई लगान न पटाये। यहाँ तक कि अगर हमारे पिता जी खुद जाकर माँगे तो भी न देवे। और तो सबने अपना अपना लगान किसी सूरत से वसूल कर ही लिया, पर तुम्हारे इस कहने के सबब

से मुझे वसूली में जो जो दिक्कतें उठानी पडी, मेरा जी ही जानता है। मुझे खुद जेठ की वरसती हुई आगी मे वसूली के लिए गाँव गाँव भटकना पड़ा है और तब भी अब तक न जाने कितनी वसूली बाकी है।

अब जेल से छूट कर तुम मदिर में ठहरे हो, और सुना है कि इसका सबब यह वताते हो कि तुमने जेल जाते हुये यह प्रण किया था कि अगर मेरे घर से पिता जी जमा पटा देंगे तो मैं घर में न रहूँगा। साथ ही जैसा ऊपर लिखा है यह भी सुना है कि तुमने किसानों को वुलाया है जिससे बहुत बड़े नुकसान हो जाने की सम्भावना है।

सौ० वींदनी की ऐसी सख्त बीमारी के वक्त अपने वाहियात प्रणों के सबब घर में न रहने से तम्हारे सुधार की मेरी जो थोडी बहुत उम्मीद थी वह भी मिट गयी और मुझे अपने घर का भविष्य ठीक नही मालूम होता। तुम अपने पक्ष को धर्म, न्याय और सत्य का पक्ष कहते हो। तुम्हारा पक्ष कैसा ही हो कम से कम मैं यह मानता हूँ कि तुम झूठ नहीं बोलते और अधर्म और अन्याय से दूर रहते हो। इसीलिए मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ और मुझे यकीन है कि अपने स्वभाव के मुताबिक तुम इसका सच्चा धर्म और न्याय का जवाब दोगे। सवाल यह है कि जिस जायदाद को तुम इस तरह नुकसान पहुँचा रहे हो वह क्या तुम्हारी कमाई हुई है, या अकेली तुम्हारी है? यह जायदाद तुम्हारे पुरखो ने कमाई है और खानदानी है, मेरे और तुम्हारी माँ के दिन अब जाने के हैं, सौभाग्यवती वीदनी की तबियत का यह हाल है, और तुम्हारी

हरकतों से अब मुझे यकीन हो गया है कि जब हम लोगों के बैठे यह हाल है तब हमारे बाद यह घर चौपट हुये बिना न रहेगा। बाप दादो की कमाई हुई जायदाद पर पानी फेरना यह मुझसे तो न हो सकेगा। तुम्हे अपने बाल-बच्चो और स्त्री का ख्याल न हो, परन्तु मुझे तो करना होगा और दुनिया के सामने भी भविष्य का ख्याल करते हुए मुझे तो अबोध बालको की रक्षा के लिए कुछ न कुछ इन्तजाम भी करना ही होगा। हर तरह से नाउम्मीद होकर मुझे इसका एक ही तरीका जान पड़ता है वह यह कि खानदानी जायदाद का हमारे तुम्हारे बीच मुनासिब बटवारा हो जाये, जिससे कम से कम मेरे हिस्से की जायदाद तो खानदान के लिए बच जावे।

तुमसे ज्यादा प्यारा मेरे लिये कोई नही, एक लड़की थी वह भी चली गयी, पर मूल से व्याज प्यारा होता है। जब तुम्हें बच्चों का ख्याल नही तो मुझे तो करना ही होगा। उम्मीद है तुम मेरे लिखने पर बुरा न मानोगे, क्योकि मैंने एक भी बात झूठ नही लिखी और कम से कम इस बटवारे के प्रस्ताव को मुनासिब समझोगे। मेरे इस आखिरी वक्त मे कुछ तो शान्ति पहुँचाओ यही मेरी तुमसे आखिरी माँग है। आशा है जब तुम दुनिया को शान्ति पहुँचाने की कोशिश में हो तो अपने बूढ़े बाप की शान्ति की तरफ जरूर ध्यान दोगे और सुपुत्र के नाते से मेरी माँग को पूरी करोगे।

सौभाग्यवती बीदनी की बीमारी के वक्त मैं यह चिट्ठी में न लिखता पर ऐसे वक्त मे भी जब तुम घर में आकर नहीं रहे और

मेरे और तुम्हारी माँ तथा सौभाग्यवती वीदनी तथा घर के सब शुभचिन्तको के लगातार समझाने पर भी जब तुमने घर में रहने से साफ साफ़ इन्कार कर दिया तथा किसानो को बुलाना नहीं रोका तब इस चिट्ठी को लिखना ही पड़ा। अब मैं चाहता हूँ कि यह मामला बगैर देरी के तय हो जावे।

तुम्हारा दुखी और व्यथित हृदय पिता

जीवनदास

मेरा विनीत उत्तर

अपनी बहू की अत्यधिक अस्वस्थता पर भी मेरा मंदिर मे ठहरना आप अपने उपर्युक्त पत्र का तात्कालिक कारण बताते हैं, किन्तु आप यह नहीं सोचते कि मेरे मदिर में ठहरने का कारण क्या है। जिस समय आपने, जो यथार्थ में ही लगान दे सकने मे असमर्थ थे, उन गरीब किसानों से लगान वसूल किया और सरकारी जमा पटाई उस समय क्या आप यह सोचते थे कि जो प्रतिज्ञा कर मैं जेल गया था, और जो आपको मालूम थी, उसे मैं जेल में, या जेल से निकलते ही, भूल जाऊँगा। वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन के आरम्भ होने के पूर्व महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने पाँच आदमियों की एक कृषि-समिति नियुक्त की थी। प्रान्तीय कमिटी के सभापति की हैसियत से मैं उस समिति का भी सभापति था, और मैंने जबलपुर, सागर और दमोह की देहातों में घूस घूमकर देखा था कि बेचारे किसानों की कितनी दुर्दशा हो

गयी है। जो किसान संसार के अन्नदाता हैं, जो संसार के लिए वस्त्रों के साधन उत्पन्न करते हैं उनकी भूख और नग्न अवस्था का मुझे ऐसा ज्ञान जैसा इस समिति के सग घूमने से हुआ, इसके पूर्व कभी नहीं हुआ था। मुझे उनके एक सेवक के नाते राजा गोकुलदास ज़ी के आलीशान महलो मे रहने और हर प्रकार के सुख भोगते रहने पर लज्जा और ग्लानि का अनुभव होता था। सत्याग्रह आन्दोलन के आरम्भ होने के पूर्व इस कृषि-समिति की रिपोर्ट न निकल सकी, परन्तु हम लोग रिपोर्ट में जो सिफारिशें करना चाहते थे, उनका निर्णय हो चुका था और मैंने जेल जाते समय पूरी ज़िम्मे-दारी के साथ इस बात को कहा था कि किसानो की इतनी बुरी स्थिति है कि वे लगान न दें और मालगुज़ार उनसे लगान वसूल न कर इसके परिणामो को भोगने के लिए तैयार हो जायँ। मैं अपने यहाँ की परिस्थिति को भी जानता था और आप क्या करेंगे इसकी भी कल्पना कर सकता था। मेरे ग़रीब किसानों को और दुःख न हो इसी उद्देश्य से मैंने यह बात कही थी कि यदि पिता जी किसानो से लगान वसूल कर सरकारी जमा पटा देंगे तो मैं राजा साहब के महल में न रहूँगा। यह कैसे सम्भव था कि मैं दूसरो के किसानों को तो लगान देने की मनाई करूँ एवं दूसरे मालगुज़ारों से कहूँ कि वे जमा न दें, पर जब मेरे पिता लगान वसूल कर जमा पटा दें तब यह कहने पर भी कि यदि पिता जी ने ऐसा किया तो मैं ऐसा करूँगा, चुपचाप आकर उसी आनंद से महल मे रहने लगूँ ? इन दो सप्ताहों में कई मित्रो, और विद्वान मित्रों, ने मुझे आकर इस सम्बन्ध में समझाया। सबका तर्क एक ही था

कि लगान की वसूली और जमा का पटाना मेरे अधिकार के बाहर की बात थी, अतः मेरा महल को लौटना अनुचित नहीं है। परतु इस बात को मानते हुए भी महल में जाकर रहना और यह समझना कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया, मै तो अपने आपको धोखा देना समझता हूँ। महल मे रहने से आपकी इस कृति से सम्पत्ति को जो लाभ पहुँचा है उसका यदि मैं ग्रहण करता तो मैं भी झूठा हो जाता और उस कृति में प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं पर परोक्ष रूप से मेरा भी सहयोग हो जाता। इतना ही नहीं प्रतिज्ञा का तो स्पष्ट ही भग होता। और जहां तक मुझे स्मरण है मैंने अभी तक तो किसी भी प्रतिज्ञा के भग करने का साहस नहीं किया।

मैं यह भी जानता हूँ कि यदि आप मेरे मतानुसार लगान न वसूल करते और जमा न पटाते तो सम्पत्ति पर बडी भारी आपत्ति आ सकती थी, परन्तु जब तक कुछ लोग अपना सर्वस्व स्वाहा करने के लिए तैयार न हो जॉय तब तक देश का क्लेश भी मिटना सम्भव नहीं। मैंने यही सोचकर उसी भाषण में जिसमें उपर्युक्त प्रण किया था यह भी कहा था कि हमारे पूर्वज राजपूताने से इस प्रान्त में लोटा-डोरी लेकर आए थे। इसी प्रान्त में व्यापार आदि उद्योगो से वे करोड़ पति हुए और यदि देश की स्वाधीनता में इस प्रान्त द्वारा किये गये युद्ध के कारण स्वय गरीबो के सुख के लिए हम लोगों का सर्वस्व जाकर फिर हमारी पूर्व की सी स्थिति हो जावे तो इससे अधिक आनद मुझे और किसी बात से न होगा। आपने गत १२ वर्षों की मेरी कृतियों से घर को जो हानियाँ पहुँची

उनका, अपने पत्र में, ब्योरेवार दिग्दर्शन कराया है। एक प्रकार से मुझ पर ये आक्षेप किये गये हैं।

नम्बर १ की हानि के विषय में किसी प्रकार की कैफियत देना निरर्थक है, परन्तु नम्बर २ में 'क' से लेकर 'च' तक के अभियोगों को मैं स्वीकृत करता हूँ और विनीत भाव से यह भी कह देना चाहता हूँ कि ये हानियाँ तो कुटुम्ब के लिए सम्मान की सामग्री हैं। यद्यपि इनसे कुटुम्ब को आर्थिक क्षति अवश्य पहुँची तथापि इनके पवित्र उद्देश्य को देखते हुए, एवं इनके पहले जिस जिस प्रकार की आर्थिक हानियां हुई हैं उनको देखते हुए, ये थोड़ी सी हानियां अधिक महत्व नहीं रखती। विगत हानियो का गिनाना मेरा उद्देश्य नहीं है।

अब मेरी अवस्था ३६ वर्ष की है और गत १८ साल से मैं बालिग हूँ। जब मैंने गत १८ वर्षों ही मे आपने जो कुछ किया उस पर कुछ नहीं किया, न एक शब्द ही कहा, तो आज तो यह सर्वथा ही अनुचित होगा।

आपने अपने पत्र में मेरे साथियो पर जो आक्षेप किया है उसीने मुझे सबसे अधिक दुःख पहुँचाया है। मेरा जिनका साथ है वह या तो प्रेम के कारण, या देश-सेवा के कारण। अन्त मे आपने मुझे सत्यवादी और अन्याय एव अधर्म से दूर रहने वाला बताया है। इस ससार में मेरे अल्प मतानुसार तो यदि किसी की सबसे अधिक प्रशंसा में कोई शब्द कहे जा सकते हैं तो वे ये ही हो सकते हैं, यद्यपि मैं अपने को इन विशेषणो के सर्वथा अयोग्य पाता हूँ। फिर भी जिस प्रश्न का आपने मुझसे उत्तर माँगा है वह मैं अवश्य

सचाई से देने का उद्योग करता हूँ और इसीलिए यह त्याग-पत्र लिख रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि यह सपत्ति न तो मेरी कमाई हुई है और न मेरी अकेले की है, परन्तु इतना अवश्य है कि जब तक मुझे उससे लाभ पहुँचता है तब तक जिन बेचारे गरीबों की मैं थोड़ी बहुत सेवा करने का प्रयत्न करता हूँ, और जिनका मैं अपने को एक तुच्छ सेवक समझता हूँ, उनको कष्ट दिया जाय यह तो सहन करना मेरे लिए सम्भव नही है।

बाप बटवारा चाहते हैं। पिता-पुत्र का बटवारा कैसा ? मैंने अपने सार्वजनिक सेवा के पथ में जिसे मैं, अपना धर्म समझता रहा हूँ, आपकी आज्ञा का कभी पालन नहीं किया। इस सम्बन्ध मे सदा श्री प्रह्लाद का आदर्श मेरे सन्मुख रहा है, परन्तु आज तो इस बटवारे में मेरे व्यक्तिगत लाभ का प्रश्न उपस्थित है, अतः आज तो मेरे सामने भगवान रामचन्द्र का उदाहरण है। उन्होंने पिता की आज्ञा से सारे भारतवर्ष का साम्राज्य छोड़ दिया था, फिर यह तो एक छोटी सी सपत्ति का प्रश्न है।

मैंने अपने को सदा एक तुच्छ व्यक्ति माना है। पर फिर भी मेरे सम्मुख आदर्श सदा ही उच्च रहे हैं। आदर्श आदर्श, ही रहते हैं और उन तक पहुँचने में जिस साहस एव त्याग की आवश्यकता होती है वह मेरे समान तुच्छ मनुष्य मे कहाँ ? फिर भी 'महाजनो येन गतः सपन्थः' के अनुसार उचित मार्ग तो वही रहता है जिस पर महापुरुष चले हैं।

मैं जानता हूँ इस ३६ साल की अवस्था तक मैं राजा गोकुल-दास जी के महलो में रहा हूँ। जितना अधिक से अधिक आधि-

भौतिक सुख इस देश के किसी भी मनुष्य को प्राप्त हो सकता है उतना मुझे प्राप्त रहा है। मैं यह भी जानता हूँ कि इस त्याग पत्र के पश्चात् का शेष जीवन कदाचित इससे विपरीत ही होगा। पर यह सम्पत्ति मैंने तो कमाई नहीं है। इसको कायम रखने के लिए ग़रीबों पर होनेवाले अत्याचारों को रोकने मे भी मैं असमर्थ हूँ। अतः मैं मेरे स्वर्गवासी पितामह पूज्य राजा गोकुलदास जी के पश्चात् जो कुछ संपत्ति आपको या मुझे प्राप्त हुई हो उस संपत्ति के सम्बन्ध में धर्मशास्त्र के अनुसार जो कुछ मेरे सत्त्व हों उन सत्त्वों का परित्याग कर आप घर के मुख्य कर्ता होने के कारण आप ही के चरणों में सारी संपत्ति को और मेरे सब सत्त्वो को समर्पित कर मैं इससे अलग होता हूँ। बटवारे का आधा भाग तो दूर रहा मुझे इसके किसी भी अंश की आवश्यकता नही है।

आपने मेरे प्रति अपने पत्र मे प्रेम भी प्रदर्शित किया है और मै भी आपको आश्वासन देना चाहता हूँ कि इस त्याग-पत्र के पश्चात् भी पुत्र के नाते मेरे आपके प्रति जो कर्तव्य है उन्हे मैं श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से ही पालन करूँगा।

यह त्याग-पत्र मैं किसी प्रकार के आवेश मे आकर या क्रोध वश नही लिख रहा हूँ, वरन् बड़े हर्ष के साथ लिख रहा हूँ। हाँ, इतना खेद मुझे अवश्य है कि आपने अपना पत्र आपकी बहू की इतनी अस्वस्थ अवस्था रहते हुए भी लिखा। यदि कुछ समय पश्चात् आप यह प्रश्न उठाते तो उचित होता। ख़ैर; भगवान इस अवसर पर भी कदाचित् मेरी यह परीक्षा ही लेना चाहते हैं। आप-

का पत्र लगातार दस दिनों तक मेरी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न रहा है। आपकी बहू की इस अस्वस्थता की अवस्था में भी मैं इन दिनों में अधिकतर आपके पत्र, और उस पर मुझे क्या करना चाहिए, इसी पर विचार करता रहा और बहुत सोचने विचारने के पश्चात् मैं इसी निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इस सारी संपत्ति को आपके चरणों पर समर्पित करने से अधिक अच्छा मार्ग मेरे धर्म और कर्तव्य के रक्षार्थ दूसरा नहीं है।

आपका और मेरा यह मतभेद सन १९२१ से ही चल रहा है, और इसके कारण इन ११, १२ वर्षों में एक बार नही, पर न जाने कितने वार घर में इस प्रकार का कलह मच चुका है, जो किसी प्रकार भी सुखप्रद नही हो सकता था। आशा है इसके पश्चात् हम लोगों का परस्पर सम्बन्ध अब तक की अपेक्षा कहीं अधिक प्रेमपूर्ण रहेगा।

आपका पुत्र

गोविन्ददास

ता० ४ अगस्त सन् १९३२

गवाह—बी० आर० सेन, वकील

गवाह—लक्ष्मणसिंह चौहान, वकील